TIGHT BINDING BOOK

TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182430
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H 81.082 P.G.H Acc No. 65

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.082 G97K Accession No. P.G. H65

Author गुप्त, केदारनाथ. Compl.

Title कवियोंकी झांकी. 1918.

This book should be returned on or before the date last marked below.

कवियों की झाँकी

(Hindi Golden Treasury)

[हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों की उत्कृष्ट
कविताओं का संग्रह]

सकलन कर्ता
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रिन्सिपल, अग्रवाल विद्यालय इन्टरमीडियेट कालिज, प्रयाग ।

प्रकाशक
छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग

प्रथम संस्करण] मई १९४८ [मूल्य ४॥)

प्रकाशक :—

केदारनाथ गुप्त एम० ए०

प्रोप्राइटर, छात्र हितकारी पुस्तकमाला

दारागञ्ज, प्रयाग।

मुद्रकः—

पं० विशवम्भर नाथ बाजपेयी

ओंकार प्रेस, प्रयाग।

निवेदन

साहित्य, राष्ट्र के महानुभावों के विचारों, भावनाओं और अनुभवों का लिखित भंडार है। अतः किसी राष्ट्र के साहित्य को हम उस राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति का निर्देशक कह सकते हैं।

समय का प्रभाव साहित्य पर बराबर पड़ा करता है। वीर-गाथा-काल का हिन्दी साहित्य युद्धों के वर्णनों से भरा पड़ा है क्योंकि वह युद्ध का समय था। मुसलमानों के अत्याचारों के कारण हिंदू जाति का जीवन जब आपत्ति पूर्ण हो गया तो उसका ध्यान राम और कृष्ण की भक्ति की ओर गया। इस प्रकार वीर रस का स्थान भक्ति ने ले लिया।

इसके अनन्तर जब भगवान की इच्छा से देश में मुसलमानों के व्यवहार हिन्दुओं के प्रति अच्छे होने लगे तो हम मुसलमानों में घुल मिल गये और विलासिता की ओर अग्रसर हुए। कवियों ने भी साहित्य को कलुषित प्रेम की उक्तियों से भरना प्रारम्भ किया।

अर्वाचीन हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावनाओं का, समाज की रूढ़ियों के खंडन का, स्वाधीनता के सिद्धान्तों का बाहुल्य मिलता है क्योंकि कुछ समय पहिले तक हमारे ऊपर विदेशियों का अंकुश था और ऐसे साहित्य की हमें आवश्यकता भी थी।

इस प्रकार समय के अनुसार साहित्य की रचना होती है, किन्तु एक बात हमें नहीं भूलनी चाहिए कि मनुष्यों की सामाजिक दशा में साहित्य ने कैसे भारी भारी परिवर्तन किए हैं। वालटेअर और रूसो के लेखों से फ्रांस की राज्य क्रान्ति हुई। इटली के उत्थान में मैज़िनी के लेखों ने बड़ा महत्व-पूर्ण काम किया। रस्किन के लेखों ने इंगलैंड के अर्थ शास्त्रियों के कान

खड़े कर दिए । रूस का राज्य विप्लव वहाँ के साम्यवादी साहित्य के कारण हुआ ।

हिन्दुस्तान के कवियों ने भी अपनी ओजस्विनी लेखनी द्वारा देश के उत्थान में असाधारण भाग लिया है । यह कथा अत्यंत प्रसिद्ध है कि भूषण ने शिवा बावनी जब महाराज शिवा जी को सुनानी शुरू की तो महाराज वीरता से भर गए और उनके ओष्ट फड़कने लगे ।

देश के कोने कोने में चारण अपनी कविता सुना सुनाकर जनता और विशेष कर राजाओं को अपनी जन्मभूमि के लिए विदेशियों से लड़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे । इन कवियों का भारतीय समाज में बड़ा आदर होता था और उन्हें प्रचुर धन भी मिलता था । रजवाड़ों में कवियों के नाम अब भी बहुत सी जागीरें लगी हुई मिलती हैं ।

जिस समय भूषण महाराजा छत्रसाला से विदाई लेकर चलने लगे तो महाराज ने उनकी पालकी में अपना कंधा लगा दिया । उस समय कवि के मुँह से सहसा निकल पड़ा कि "साहू को सराहों कि सराहों छत्रसाला को" । कवियों ने समय समय पर देश और समाज के प्रति कितना महत्वपूर्ण कार्य किया है; इसे विज्ञ पाठक भली भाँति जानते हैं ! ऐसे कवियों के प्रति जितनी कृतज्ञता प्रगट की जाय, कम है । हमें विश्व विद्यालयों में बतलाया जाता है कि शेक्सपियर, मिल्टन और वर्ड्सवर्थ बड़े ऊँचे कवि थे किन्तु जो अँगरेजी और हिन्दी दोनों साहित्यों से परिचित हैं उन्हें भली भाँति ज्ञात है कि कबीर, सूर, और तुलसी का स्थान इन कवियों की अपेक्षा कितना ऊँचा है । जब तक कबीर, सूर, और तुलसी का साहित्य हिन्दी में वर्तमान है, तब तक हिन्दी अमर है ।

सन् १९३० ई० में मुझे अँगरेज़ी की गोल्डेन ट्रेज़री (Golden Treasury) नाम की पुस्तक पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । उसमें संग्रहकर्ता महाशय ने अँगरेजी के उत्कृष्ट कवियों की चुनी हुई कविताओं का संग्रह किया है । अँगरेजी पठित समाज में इस पुस्तक का बड़ा आदर और प्रचार हुआ है ।

मेरे मन में उसी समय से यह इच्छा उत्पन्न हुई कि यदि हिन्दी कवियों की चुनी हुई कविताओं का एक संग्रह इसी प्रकार का प्रकाशित किया जाय तो हिन्दी-प्रेमियों को इससे बड़ा लाभ होगा और वे अपने कवियों से भली भाँति परिचित भी हो जायँगे।

उसी समय से चन्द बरदाई से लेकर आजकल के प्रायः सभी कवियों की कविताओं को मैंने यथा समय धीरे धीरे पढ़ना शुरू किया और उन पर चिन्ह लगाने लगा। कविताओं में अधिक दिलचस्पी होने के कारण मैं तो उन्हें 'स्वान्तः सुखाय' पढ़ता था।

जब मेरे पास सामग्री अधिक हो गई और मैंने देखा कि ऐसे संग्रह निकालने की ओर अभी किसी सज्जन का ध्यान नहीं गया तो मैंने फिर उन कविताओं को स्वयं लिखना और अपने प्रेमियों से लिखाना शुरू किया। परमात्मा की कृपा से धीरे धीरे यह संकलन तैय्यार हो गया, और मेरे मित्र पं० गणेश पांडेय ने इसे तैय्यार कराने में मुझे बहुत ही अधिक प्रोत्साहित किया। वर्तमान संग्रह उन्हीं की प्रेरणा का फल है।

चन्दबरदाई से लेकर आजकल के प्रसिद्ध कवियों की कविताओं से परिचित कराना इस पुस्तक का उद्देश्य है। प्रत्येक कवि ने कितना साहित्य सृजन किया है, उसे पढ़ने के लिए प्रचुर समय चाहिए। अतएव मैंने प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों की अत्यंत महत्वपूर्ण कृतियों को ही इस संकलन में स्थान दिया है। उनसे पाठकों को भली भाँति ज्ञात होगा कि ये हिन्दी के कवि कितने ऊँचे दरजे के हैं।

इस पुस्तक को मैंने धन उपार्जन करने के लिए नहीं तैय्यार किया है। इसका मुख्य उद्देश्य यही है कि हिन्दी प्रेमी कविताओं को पढ़कर अपने हिन्दी के कवियों का सम्मान करें और फिर उनके सब ग्रंथ पढ़ें। इस प्रकार हिन्दी कवियों ने जो जो ग्रंथ लिखे हैं, उनका भी जनता में काफी प्रचार हो।

इस संकलन में मैंने आवश्यकतानुसार कवियों की कविताओं का उपयोग किया है, क्योंकि मैं समझता हूँ कि वे अत्यंत सहृदय और उदार हैं। इसके अतिरिक्त उनको इस बात की भी प्रसन्नता होगी कि मैं उनको एक छोटे किन्तु आकर्षक और प्रभावशाली रूप में जनता के सामने रख रहा हूँ। वास्तव में उनकी कविताओं के उपयोग करने में मैं उनका और उनके प्रकाशकों का अत्यंत आभारी हूँ।

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर उदय नारायण जी तिवारी को मैंने छपने के पूर्व इस संग्रह को दिखला लिया है और उनकी अमूल्य सम्मति से इसमें संशोधन भी कर दिया है। अतएव मैं डाक्टर साहब का अत्यंत आभारी हूँ।

इस संकलन के तैय्यार करने में पं० ओंकार नाथ जी मिश्र, श्री प्रभाकर ठाकुर, कुमारी सरला श्रीवास्तव और बहिन मोहनी देवी श्रीवास्तव ने मेरी बड़ी सहायता की है। अतएव मैं अपने इन मित्रों और बहिनों का अत्यंत आभारी हूँ।

मैंने इस पुस्तक का नाम 'कवियों की झाँकी' रक्खा है क्योंकि झाँकी की तरह ही मैंने इसे प्रसिद्ध कवियों की कविताओं से सजाया है। मुझे आशा है 'कवियों की झाँकी' का भी गोल्डेन ट्रेजरी की तरह अत्यंत आदर और प्रचार होगा।

श्री रामनवमी
सम्वत् २००५

केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रिंसिपल
अग्रवाल विद्यालय इंटर कालिज,
प्रयाग

—:o:—

विषय-सूची

संख्या	विषय			पृष्ठ
१—चन्द बरदाई		...	...	१—७
	घग्घर नदी का युद्ध			
२—विद्यापति		...	...	८—११
	शक्ति-स्तुति, वसन्त, पद,			
३—कबीरदास		...	...	१२—२८
	साखी, पद			
४—मलिक मुहम्मद जायसी		...	...	२९—३१
	पद्मावती सौन्दर्य, पद्मावती का सती होना			
५—मीराबाई		...	...	३२—३६
	पद			
६—सूरदास		...	...	३७—५३
	पद			
७—तुलसीदास		...	...	५४—६५
	रामायण से :—			

नाम वन्दना, रामचरित मानस-महिमा, कामदेव का प्रताप, रामजन्म और उनका स्वरूप, पार्वती-प्रार्थना, राम का विराट स्वरूप, पति ही स्त्री का सर्वस्व है, सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश, संसार की निमूलता, तीरथ राज प्रयाग

संख्या	विषय			पृष्ठ
	का वर्णन, भगवान के रहने का स्थान, शोचनीय पुरुष के लक्षण, भरत की तपस्या, स्त्री-धर्म, नवधाभक्ति, सच्ची मित्रता, वर्षा-वर्णन, शरद-वर्णन, विजय रथ, राम राज्य, संत के लक्षण, असंत के लक्षण, कलियुग का धर्म, भक्ति की महिमा, परमार्थ के कुछ प्रश्न और उनके उत्तर, कलियुग में मुक्ति साधन, सूक्तियां, विनय पत्रिका, कवितावली रामायण			
८—नन्ददास		...	...	९६—१०१
	भ्रमर गीत से, रास पंचाध्यायी से			
९—नरोत्तम दास		...	...	१०२—१०३
	सुदामा चरित			
१०—रहीम		...	...	१०४—१०८
	दोहे			
११—केशव दास		...	...	१०९—११५
	राम चन्द्रिका से, रसिक-प्रिया से, कवि-प्रिया से			
१२—रसखान		...	...	११६—११८
	प्रेम वाटिका से			
१३—सेनापति		...	...	११९—१२५
	वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर			
१४—बिहारी		...	...	१२६—१३२
	दोहा			
१५—भूषण		...	...	१३३—१३८
१६—मतिराम		...	...	१३९—१४२
१७—घनानन्द		...	...	१४३—१४५
१८—देव		...	...	१४६—१४९
१९—वृन्द		...	...	१५०—१५३

संख्या	विषय			पृष्ठ
२०	—गिरिधर दास कुंडलियां	...	...	१५४—१५५
२१	—पद्माकर	...	...	१५६—१५६
२२	—दीन दयाल गिरि अन्योक्ति	...	...	१६०—१६२
२३	—राजा लक्ष्मण सिंह मेघदूत-सार	...	...	१६३—१६७
२४	—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र गंगा छवि, यमुना छवि, चूरन का लटका, अपना स्वभाव	...	...	१६८—१७२
२५	—बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' प्रार्थना, शोकाश्रु, हास्य विन्दु, नागपञ्चमी		...	१७३—१७४
२६	—श्रीधर पाठक मयंक के प्रति, काश्मीर सुषमा, शरद सौन्दर्य, प्रकृति वर्णन	...	...	१७५—१८०
२७	—महावीर प्रसाद द्विवेदी शरीर रक्षा, कोकिला, नागरी तेरी यह दशा, ! हिमालय		...	१८१—१८७
२८	—नाथूराम शंकर	...	...	१८८—१९०
२९	—अयोध्या सिंह उपध्याय सन्ध्या का वर्णन. राधा की शोभा, एक बूंद, प्रलय, एक तिनका,		...	१९१—१९६
३०	—किशोरी लाल गोस्वामी ... गंगावतरण, चन्द्रोदय		...	१९७—२०१
३१	—लाला भगवान दीन कलावती, फुटकर	...	...	२०२—२१०

संख्या	विषय	पृष्ठ
३२—	देवी प्रसाद 'पूर्ण'	२११—२१७
	वर्षा वर्णन, गीता गुण गान	
३३—	जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'	२१८...२२४
	कृष्ण विरह, गंगावतरण, श्मशान भूमि का वर्णन	
३४—	रामचरित उपाध्याय	२२५—२२९
	कला, मेरे पिता,	
३५—	सत्यनारायण 'कविरत्न'	२३०—२३५
	प्रेम कली, वसन्त, पद	
३६—	मन्नन द्विवेदी	२३६—२३७
	मातृ भूमि— उद्बोधन	
३७—	लोचन प्रसाद पांडेय	२३८—२४१
	मृगी-दुःख मोचन	
३८—	रामचन्द्र शुक्ल	२४२—२४४
	कुमार की चिंता, आमंत्रण	
३९—	गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' ...	२४५—२४८
	भक्त की अभिलाषा, माहमा पथिक	
४०—	मैथिली शरण गुप्त	२४९—२५८
	साकेत वर्णन, लक्ष्मण की उर्मिला से भेंट, मातृभूमि, राहुल जननी, महोबे की शोभा, शुभ कामना	
४१—	माखन लाल चतुर्वेदी ...	२५९—२६२
	पुष्प की अभिलाषा, झरना	
४२—	जय शंकर प्रसाद	२६३—२६९
	चिन्ता, व्यथा, हृदय का सौन्दर्य, भारतवर्ष, वरुणा की कछार	
४३—	गोपाल शरण सिंह	२७०—२७५
	ब्रज वर्णन, अचरज, शिशु की दुनिया, उपालम्भ ।	

संख्या	विषय		पृष्ठ
४४—	सियाराम शरण गुप्त	...	२७६—२७८
	देश गान, विदेह बापू		
४५—	मुकुट धर पांडेय ...	...	२७९—२८१
	कुररी के प्रति, विश्व बोध		
४६—	श्री वियोगी हरि ...	...	२८२—२८६
	शक्ति-स्तुति, पद्मिनी जौहर, महाराणा-साँगा, जयमल और पत्ता, महाराणा प्रताप, फुटकर		
४७—	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	...	२८७—२९५
	खंडहर के प्रति, दिल्ली, उद्बोधन, तुलसी दास जी की चेतना		
४७—	सुमित्रा नंद पंत ...	...	२९६—३०५
	बादल, छाया, मौन - निमंत्रण		
४९—	महादेवी वर्मा ...	...	३०६—३११
	प्रभात, गीत, अधिकार, उद्बोधन, गीत		
५०—	सुभद्रा कुमारी चौहान ...	...	३१२—३१७
	झाँसी की रानी		
५१—	राम नरेश त्रिपाठी ...	...	३१८—३२०
	अन्वेषण		
५२—	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	...	३२१—३२३
	विप्लव गायन, जगत उबारो		
५३—	अनूप शर्मा ...	...	३२४—३२७
	सुमन, बालकपन, महाभिनिष्क्रमण		
५४—	गुरु भक्त सिंह 'भक्त' ...	...	३२८—३३०
	वीर भारत, मेहर की शैशव-शोभा		

संख्या विषय		पृष्ठ
५५—रामधारी सिंह 'दिनकर'	...	३३१—३४०
हिमालय के प्रति, कुरु-क्षेत्र		
५६—सोनलाल द्विवेदी ...	...	३४१—३४७
वासव दत्ता, युगावतार गाँधी		
५७—भगवती चरण वर्मा ...	...	३४८—३५४
भैंसा गाड़ी		
५८—रामकुमार वर्मा ...	...	३५५—३५७
झरना, यह गजरे तारों वाले, संकेत		
५९—पं० श्यामनारायण पांडेय	...	३५८—३६२
हल्दी घाटी, राणा की तलवार		
६०—हरिवंश राय 'बच्चन'	...	३६३—३६९
आशे, मधुशाला, बंगाल का काल, निशा-निमंत्रण		
६१—मोहनलाल महतो 'वियोगी'	...	३७०—३७५
आर्य्यावर्त से, पृथ्वीराज की शब्द-वेध विद्या		
६२—जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'	...	३७६—३७९
सती सुलोचना		
६३—नरेन्द्र शर्मा ...	...	३८०—३८२
प्रयाग		
६४—उदय शंकर भट्ट ..	...	३८३—३८४
मैं पथिक अवरुद्ध पथ		
६५—रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	...	३८५—३८६

कवियों की झाँकी

चँदबरदाई

घग्घर नदी का युद्ध

कवित्त

दिल्लियपति प्रथिराज, अवनि आषेटक खिल्लिय।
साठ सहस असवार, जाइ लग्गा धर ढिल्लिय॥
धूनि धरा पतिसाह, रहे पेसोर सुथानय।
सथ्थ लिये सामंत, दिली कैमास सुजानय॥
म्रगया सु रमय प्रथिराज बर, गज्जन वैषर धूसियै।
दूसरी इन्द्र दिल्लेस बर, सुभर मरस ढिग सुभ्भियै॥ १॥

दोहा

गई षबर अम्मान की, उठ चढ़े असवार।
दिल्ली धर लिजै सषत्र, दिसि गज्जनै पुकार॥ २॥

प्रथीराज साजत पवँग, है गै नर भर भार।
दिल्लीपति आखेट चढ़ि, कुहुकबान हथनारि॥ ३॥

डेरा करि पेसोर नृप, सहस सट्ठि सुभ बाज।
सोन पंथ बिच पंथ दीह, गल गज्जै अग्राज॥ ४॥

कवित्त

गौरी पठए दूत, चले च्यारों चतुरन्नर।
लीय पत्बरि प्रथिराज, चले पच्छे गज्जन धर॥
किय सलाम जब दूत, तबहि तत्तार सुबुझिभय।
कहा करंत दिलेस, चढ़त गिरवर धर धुज्जिय॥
सँग सतघट्ट सामंत चलि, तीन पाव लष्षह तुरी।
अनि सूरबीर नर वर सकल, चुड़ी षेह धर उप्परी॥ ५॥

आपेटक दिन रमय, सग स्वानं घन चीते।
नावक पावक बिपुल, जक्कि दिन जामह जीते॥
सहस तुरी बग्गह सु, संत मेषा कलि कंठिय।
सीहगोस पुच्छिय सु, लंब खिरषां सिर पुठ्ठिय॥
जुरी रु बाज कूही गुहा, धानुक्की दारू धरा।
बहु काल भाल बदकं बिला, जम भय तब जित्तिय धरा॥ ६॥

रमै राज आषेट, सत्त एकल बल भंजै।
पंच पथ्थ परिगाह, रंग अप्पन मन रंजै॥
सहस एक वाजित्र, सूर किरनह संपेषै।
सुनि गौरी साहाब, दाह दिल महन विसेषै॥
जितौव जब्ब प्रथिराज कों, तब तसबी कर मंडिहौं।
टामंक सद्द नद्दह करौं, जुगति साह तब छंडिहौं॥ ७॥

दोहा

देस देस कग्गद फटे, पेसंगी षुरसान।
रोम हबस अरु बलक में, फट्टे पहु अप्पान॥ ८॥

कवित्त

सिलह लोह सज्जंत, लष्ष पंचह मिलि पष्षर ।
कूंच कूंच षरि षैर, गुरज धारी लग गष्षर ॥
कोस दहं दह कूच, आइ गिरवान सपत्तौ ।
दौरि दूत दिल्लेस, जाम कर त्रय दिन वित्तौ ॥
मुक्काम कियो प्रथिराज नृप, तहाँ षचरि करिदूत सब ।
गोरी नरिंद है गै सुमर, सजि आयो उप्पर सु अप ॥ ९ ॥

चैत मास रवि तीज, सेत पष्षह कल चदह ।
भयो सुदिन मध्यान, चल्यो प्रथिराज नरिंदह ॥
कटक सबर हिल्लोर, भार सेसह करि भग्गिय ।
चढ़ि सामंत सकज्ज, नद्द सुर अंमर जग्गिय ॥
गज रोर सोर बंधे घटा, सिलह बीज सिलकावलिय ।
पप्पीह चीह सहनाइ सुर, नदि घग्घर मेलान दिय ॥ १० ॥

दोहा

आयौ आतुर उप्परह, पैसंगो पतिसाह ।
पच्छाई बादल प्रबल, भग्गे राह विराह ॥ ११ ॥

बरन बरह तहँ देषिये, घंटा रव गजराज ।
सन्नाहा सन्नाह रजि, पष्षर सष्षर साज ॥ १२ ॥

भई हलोहल सेन सब, पान ब्यूह बर खेत ।
लष्ष एक भर अंग मैं, छत्र धरयो सिर सेत ॥ १३ ॥

हुअ टामंक सुदिसि बिदिसि, हुअ संनाह सनाह ।
हुअ हलोहल सुम्भरन, दोऊ दिन एक राह ॥ १४ ॥

त्रोटक

हुअ सद्द सुसद्दह नद्द भर, घन बेरिक कीय सुफौज वरं ।
लष लष्षं मिले दल संमिलयं, नर भद्दव वाद्दल संमिलियं ॥ १५ ॥

सु अगं हथनारि अपार सजं, तिन देषत काइर दूर भजं ।
तिन पिट्ठ हजारउ मत्त चलें, छुह रित्त झरंत करी तिहले ॥ १६ ॥

तिन पिट्ठह फौज गहव्वरयं, धरि गोरिय मुट्ठ करं धरियं ।
कमनैत अभूल सुलष्ष लियं, तिन मध्य ततारह छत्र दियं ॥ १७ ॥

लष दोय गुरज्ज स गष्षरियं, षुरसान दियं दल पष्षरियं ।
बलकी हमराव सु सत्त सयं, निसुरत्तह लष्षह कम्म भयं ॥ १८ ॥

षुरसान तनं दल उप्पटयं, मनु साइर सत्त उलट्ठ भयं ।
जलवानिय पानिय अद्ध सरं, लोहानिय पानिय खेतवरं ॥ १९ ॥

हबसी उजबक्क हमीर भरं, कलवानिय कम्मिय अग्ग धरं ।
सरवानि ऐराकि मुगल्ल कती, बहु जाति अनेक अनेक भती ॥ २० ॥

कवित

फौज बंधि सुरतान, मुष्ष अग्गे तत्तारिय ।
मधि नायक सुरतान, नील षुरसान सुभारिय ॥
मोंती निसुरति षान, लाल हबसी कोलंजर ।
षानि पीठि रुस्तंम, पना बहु भाँति अवर नर ॥
उत्तरिय नद्द गोरीस पहुं, बज्जा दस दिसि बज्जिया ।
मानो कि भद्द उलटी महा, साइर अंबु गरज्जिया ॥ २१ ॥

दोहा

दिल्लीपति फौजह रची, दियौ जैत सिर छत्र ।
चामंडराय अग्गै भयौ, मनो सु गिरवर गत्त ॥ २२ ॥

कवित्त

फौज रची सामंत, गरुड़ व्यूहं रचि गढ्ढिय।
पंष भाग प्रथिराज, चंच चावंड सुगढ्ढिय॥
गावरि अत्ताताइ, पाइ गोइंद सुठढ्ढिय।
पुच्छ कन्ह चौहान, पेट पम्मारह पढ्ढिय॥
मुंडाल काल अग्गो धरे, कढ्ढे दोइ कलहन्न किय।
चालंत बान गोरे प्रबल, मानहु अंषकि मार दिय॥ २३॥

तत्तारह उप्परह, चित्त चावंड चलायौ।
दुहूँ फौज अग्गंज, दुहूँ भुज भार भलायौ॥
मीर बान बरषत, धार धारा हर लग्गौ।
वाही चामँडराय, भूमि तत्तारह भग्गौ॥
उत्तरे मीर से पञ्च दुइ, दाहिम्मै किन्नौ दहन।
पहिले जु झुज्झ दिन पहिलकै, मच्यौ जुद्ध जानै महन॥ २४॥

भूमि परयौ तत्तार, मारि कमनेत प्रहारै।
एक घाव दोइ टूक, परे धारन मुहुधारै॥
षुर बज्जै षुरतार, चमकि चामंड चलायौ।
भरै बथ्थ सिर हथ्थ, एक बहु लष्षन घायौ॥
जब परै बूँद तब वीर हुअ, सत्त घरी साहस धरै।
तिनमा कटक्क त्रिबिधी घड़ा, एक एक पग अनुसरै॥ २५॥

प्रान पान आखूंद, अट्ठ सहस बहु गष्षर।
परिय : पंति अवनेस, पारि बहु अष्षर गष्षर॥
हयौ नेज चामंड, वीर दो सहस लरै भर।
हस्ति एक बिन दंत, तमह तिन मथौ सहस कर॥
दाहिम्मराय मुरछयौय परयौ, दौरयौ जैतमहाबलिय।
मानौ कि अमा जज्जर बही, कलि मझ्झे रिन वट कलिय॥ २६॥

घर्षा सेन सुरतान, मुट्ठि छुट्टी चावंडिवि।
मनु कपाट उद्धरयो, कूह फुट्टिय दिवि दिद्दिसि॥
मार मार मुष किन्न, लिन्न चावंड उपारे।
परे सेन सुरतान, जाम इक्कइ परि धारे॥
गल बथ्थ थत्त गाढौ ग्रह्यौ, जानि सनेही भिंटयौ।
चामंडराइ करि वर कहर, गोरी दल बल कुट्टयौ॥२७॥

जैतराइ जडधार, लियो कर दंत मुष्ष कर।
परे वज्र सिर धार, मनों सेना सिर उप्पर॥
पुरसानी बंगाल, मनहु डंडूर रमावै।
भरै पत्र जोगिनी, डक्क नारद बजावै॥
अपछरा गीत गावत इला, तुंबर तंत बजावहीं।
सुरतान सेन दिल्लेस बर, मग्ग मग्ग जस गावहीं॥२८॥

सिर भनत पतिसाह, भाह सुनि सेना सथ्थिय।
लुथ्थि लुथ्थि मुह धार, परे बथ्थन सो बथ्थिय॥
जम सो जम आहुरैं, सूर जुट्टें दोइ घुट्टैं।
नई गंठि तन जोग, सूर मुंडावलि घुट्टैं॥
पुरसान जैत अब्बूधनिय, धार धार मुँह कढ्ढिया।
ऐसो न जुद्ध दिष्यौ सुन्यौ, दारुन भेद दबढ्ढिया॥२९॥

मनु द्वादस सूरज्ज, हथ्थ चन्द्रमा महासर।
जिन उप्पर पलमलैं, ताहि घर गोरिय सुम्भर॥
कटक कुह किलकार, सार परमार बजायौ।
भिरि भंज्यौ सुरतान, एक एकह मुष घायौ॥
सिर सार धार बुढयौ प्रहर, तब दौरयौ पज्जून भर।
निसुरत्तिमान लष्षह बली, लष्ष एक पाइल सुभर॥३०॥

भुजंगी

मचे कूह कूहं बहै सार सारं, चमक्कैं चमक्कैं करारं सुधारं ।
भभक्कै भभक्कै वहै रत्त धारं, सनक्कैं सनक्कैं बहैं बान भारं ॥ ३१ ॥
हबक्कैं हबक्कैं बहैं सेल मेलं, हलक्कैं हलक्कैं मची ठेल ठेलं ।
कुकैं कूक फूटी सुरत्तान ठानं, बकी जोग माया सुरं अप्प थानं ॥ ३२ ॥
बहै चट्ट पट्टं उघट्टं उलट्टं, कुलट्टा धरै अप्प अप्पं उलट्टं ।
दडक्कं बजै सथ्य मथ्यं सुटट्टं, कडक्कं बजै सेन सेना सुघट्टं ॥ ३३ ॥
बहै हथ्थ परमार सिरदार सारं, परे सेन गोरी बहै रत्तधारं ।
परयौ पान निसुरत्ति सेना सहित्तं, हुऔ सूर मथ्यान दिल्ले सचित्तं ॥ ३४ ॥

विद्यापति

(१)

शक्ति-स्तुति

कनक भूधर शिखर वासिनि, चन्द्रिका चय चारु हासिनि
दशन कोटि विकाश बंकिम तुलित चन्द्रकले ।
क्रुद्ध सुर रिपु बल निपातिनि, महिष शुंभ निशुंभ घातिनि
भीत भक्त भयापनोदन पाटले प्रबले ।
जय देवि दुर्गे दुरित हारिणि, दुर्गमारि विमर्द कारिणि
भक्ति नम्र सुरासुराधिप मंगलायतरे ।
गगन मंडल गर्भ गाहिनि, समर भूमिषु सिंह वाहिनि
परशु पाश कृपाण शायक शंख चक्र धरे ।
अष्ट भैरवि संग शालिनि, कृत कपाल कदम्ब मालिनि
दनुज शोणित पिशित वर्द्धित पारणारभसे ।
संसार बंध निदान मोचिनि, चन्द्रभानु कृशानु लोचिनि
योगिनी गण गीत शोभित नृत्य भूमि रसे ।
जगति पालन जनन मारण, रूप कार्य सहस्र कारण
हरि विरञ्चि महेश शेखर चुम्ब्यमान पदे ।
सकल पाप कला परिच्युति, सुकवि विद्यापति कृत स्तुति
तोषिते शिवसिंह भूपति कामना फल दे ।

(२)

वसंत

आएल रितुपति राज बसंत ।
धाओल अलिकुल माधवि-पंथ ॥

दिनकर-किरन भेल पौगंड ।
केसर कुसुम धएल हेमदंड ॥

नृप-आसन नव पीठल पात ।
कांचन कुसुम छत्र धरु माथ ॥

मौलि रसाल-मुकुल भेल ताय ।
समुख हि कोकिल पञ्चम गाय ॥

सिखिकुल नाचत अलिकुल यंत्र ।
द्विजकुल आनपढ़ आसिख मंत्र ॥

चंद्रातप उड़े कुसुम पराग ।
मलय पवन सह भेल अनुराग ॥

कुंदवल्ली तरु धएल निसान
पाटल तून असोक-दलबान ॥

किंसुक लवंग-लता एक संग ।
हेरि सिसिर रितु आगे दल भंग ॥

सैन साजल मधु-मखिका कूल ।
सिसिरक सबहु कएल निरमूल ॥

उधारल सरसिज पाओल प्रान ।
निज नव दल करु आसन दान ॥

मध वृन्दावन राज बिहार ।
बिद्यार्पात कह समयक सार ॥

नव वृन्दावन नव नव तरुगन
नव नव बिकसित फूल ।

नवल बसंत नवल मलयानिल
मातल नव अलि कूल ॥
बिहरइ नवल किसोर

कालिंदी-पुलिन-कुंज बन सोभन
नव नव प्रेम-विभोर ॥

नवल रसाल मुकुल-मधु मातल
नव कोकिल कुल गाय ।

नवजुवती गन चित उमता आई
नव रस कानन धाय ॥

नव जुवराज नवल बर नागरि
मीलए नव नव भाँति ।

निति निति ऐसन नव नव खेलन
विद्यापति मति माति ॥

(३)

पद

माधव, कत तोर करब बड़ाई
उपमा तोहर हम ककरा कहब कहितहुँ अधिक लजाई ॥

जो श्रीखंड सौरभ अति दुर्लभ तौ पुनि काठ कठोर।
जो जगदीश निशाकर तौं पुनि एकहि पच्छ इजोर॥
मनि समा१ अ-औरो नहिं दोसर तनिकहुँ पाथर नामे।
कनक कदलि छोट लज्जित भै रहु की कहु ठामहि ठामे॥

कबीर दास

साखी

जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप ।
पुहुप बास तें पातरा, ऐसा तत्व अनूप ॥ १ ॥

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तौ गारि ।
है जैसा तैसा रहै, कहै कबीर विचार ॥ २ ॥

सगुण की सेवा करौ, निर्गुण का कर ज्ञान ।
निर्गुण सगुण के परे, तहैं हमारा ध्यान ॥ ३ ॥

साहेब सो सब होत है, बँदे ते कछु नाहिं ।
राई ते पर्वत करे, पर्वत राई माहिं ॥ ४ ॥

जाको राखै साँइयाँ, मारि न सक्कै कोय ।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग वैरी होय ॥ ५ ॥

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि ।
तेरा साँई मुज्झ में, जागि सकै तो जागि ॥ ६ ॥

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह ।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ॥ ७ ॥

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥ ८ ॥

अर्ब खर्ब लौं दर्ब है, उदय अस्त लौं राज ।
भक्ति महातम ना तुलै ये सब कौने काज ॥ ९ ॥

यह तो है घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं ।
सीस उतारै भुइ धरै, तब पैठे घर माहिं ॥ १० ॥

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान ।
जैसे खाल लोहार की, सांस लेत बिनु प्रान ॥ ११ ॥

जल में बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकास
जो है जाको भावता, सो ताही के पास ॥ १२ ॥

दुख में सुमिरन सब करै, सख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे को होय ॥ १३ ॥

सुमिरन की सुधि यों करौ, जैसे कामी काम ।
एक पलक बिसरै नहीं, निस दिन आठो जाम ॥ १४ ॥

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर ।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ॥ १५ ॥

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख मांहि ।
मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥ १६ ॥

साईं इतना दीजिये, जामें कुटुँब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥ १७ ॥

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं ।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावों तोहिं ॥ १८ ॥

साहब तुम जनि बीसरो, लाख लोग लगि जाहिं ।
हमसे तुमरे बहुत हैं, तुम सम हमरे नाहिं ॥ १९ ॥

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जो करनी ऊँच न होय ।
सोवन कलस सुरा भरा, साधू निंदै सोय ॥२०॥

काठो काठैं घर करैं, पीवैं निर्मल नीर।
मुकति नहीं हरि नाम बिन, यौं कहै दास कबीर ॥२१॥

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूँढ़ै वन माहिं।
ऐसे घटि घटि राम हैं, दुनिया देखै नाहिं ॥२२॥

कबीर यह जग कछु नहीं, खिन खारा खिन मीठ।
काल्ह जो बैठा मण्डपै, आज नसानै दीठ ॥२३॥

जहाँ जरा मरन ब्यापै नहीं, मुवा न सुनिये कोय।
चलु कबीर तिहि देसड़ै, वैद विधाता होय ॥२४॥

मैंमंता मन मारिरे, नान्हाँ करि करि पीस।
तब सुख पावे सुन्दरी, ब्रह्म झलक्कै सीस ॥२५॥

जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि ॥२६॥

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥२७॥

सूरा होइ सराहिये लड़े, धनी के हेत।
पुरजा पुरजा होइ रहै, तऊ न छाँड़ै खेत ॥२८॥

तीर तुपक से जो लड़ै, सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥२९॥

कबिरा सीप समुद्र की रटै, पियास पियास।
और बूँद को ना गहै, स्वाति बूँद की आस ॥३०॥

सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राँड़।
साधू भीख न माँगई, जो माँगै सो भाँड़ ॥३१॥

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय ॥३२॥

सिंहों के लेंहड़े नहीं, हंसों की नहि पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चलैं जमात ॥३३॥

गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी सों नेह।
कह कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥३४॥

बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर ॥३५॥

जाति न पूछौ साध की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥३६॥

संत न छोड़ै संतई, कोटिक मिलै असंत।
मलया भुवँगहि बेधिया, सीतलता न तजंत ॥३७॥

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहि ॥३८॥

केसन कहा बिगारिया, जो मूँड़ो सौ बार।
मन को क्यों नहिं, मूँड़िये जामे विषै विकार ॥३९॥

गुरू विचारा क्या करै, शिष्यहि में है चूक।
शब्द-बाण बेधे नहीं, बाँस बजावै फूँक ॥४०॥

कबिरा संगत साध की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठो पहर उपाधि ॥४१॥

जानि बूझि साँची तजै, करै झूठि सो नेह।
ताकी संगति हे प्रभू सपने हूँ मति देह ॥४२॥

दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन पर बोधिये, कागा हंस न होय ॥४३॥

तन को जोगी सब करै, मन को बिरला कोय।
सहजै सब बिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥४४॥

कबिरा गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥४५॥

पानी केरा बुद्बुदा, अस मानस को जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥४६॥

काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥४७॥

पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥४८॥

ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के ब्योहार में, झूठे रंग न भूल ॥४९॥

माटी कहै कुम्हार सो, तू क्या रूँदै मोहिं।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूंगी तोहिं ॥५०॥

आये हैं सो जायंगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले, इक बंधि जात जंजीर ॥५१॥

मैं भंवरा तोहि बरजिया, बन बन बास न लेय।
अटकैगा कहुँ बेल से, तड़पि तड़पि जिय देय ॥५२॥

एक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं ॥५३॥

चलती चक्की देखि के, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइ के, साबित गया न कोय ॥५४॥

माली आवत देखि के, कलियाँ करैं पुकार।
फूली फूली चुनि लिये, काल्हि हमारी बार ॥५५॥

जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहिं फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥५६॥

दुर्बल को न सताइऐ, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की मांस से, लोह भसम है जाय ॥५७॥

कबिरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय ॥५८॥

या दुनिया में आइके, छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥५९॥

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय ॥६०॥

माँगन मरन समान है, मति माँगो कोइ भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥६१॥

पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिखि लिखि भये जो ईंट।
कबिरा अंतर प्रेम की, लागी नेक न छींट ॥६२॥

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥६३॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित हुआ न कोय।
एकै अच्छर प्रेम का; पढ़ै सो पण्डित होय ॥६४॥

कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥६५॥

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग घट में खान।
कहा मूर्ख कहँ पण्डिता, दोनों एक समान ॥६६॥

कुटिल वचन सब से बुरा, जारि करै तन छार।
साध वचन जल रूप है, बरसै अमृत धार ॥६७॥

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥६८॥

प्रभुता को सब कोउ भजै, प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय ॥६९॥

हेत प्रीति सो जो मिलै, ताको मिलिये धाय।
अन्तर राखे जो मिलै, तासो मिलै बलाय ॥७०॥

कबिरा जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै, जगत गुरू वह दास ॥७१॥

दोष पराया देखि करि, चले हसत हसत।
अपने याद न आवई, जा को आदि न अंत ॥७२॥

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगताँ के पीछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥७३॥

माया के झक जग जरै, कनक कामिनी लागि।
कह कबीर कस बाँचिहै, रुई लपेटी आगि ॥७४॥

पर नारी पैनी छुरी, मति कोइ लाओ अंग।
रावन के दस सिर गये, पर नारी के संग ॥७५॥

छिमा बड़न को उचित है, छोटन को उत्पात।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥७६॥

जहाँ दया तहं धर्म्म है, जहाँ लोभ तहं पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥७७॥

जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सजन को काम ॥७८॥

गोधन गजधन बाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥७९॥

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ॥ ८० ॥

बुरा जो देखने मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजो आपना, मुझसा बुरा न होय ॥ ८१ ॥

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कछु-है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागैगा मोर ॥ ८२ ॥

लघुता ते प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटी लै शक्कर चली, हाथी के सिर धूरि ॥ ८३ ॥

दया कौन पर कीजिये, का पर निर्दय होय।
सांई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय ॥ ८४ ॥

साच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है, ता हिरदे गुरु आप ॥ ८५ ॥

मूरख को समझावते, ज्ञान गाँठि को जाय।
कोइला होइ न ऊजरो, नौ मन साबुन लाय ॥ ८६ ॥

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात है, ताको कौन हवाल ॥ ८७ ॥

दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कहु क्यों खुसी खुदाय ॥ ८८ ॥

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक ॥ ८९ ॥

कबिरा मनहि गयन्द है, आँकुस दै दै राखु
बिष की बेली परिहरी, अमृत का फल चाखु ॥ ९० ॥

कबिरा सांई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर ॥ ९१ ॥

देह धरे कर दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, मूरख भुगतै रोय ॥ ९२ ॥

राम झरोखे बैठि के, सब के मुजरा लेय।
जैसी जाकी चाकरी, तैसा ताको देय ॥ ९३ ॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥ ९४ ॥

पद

(१)

रस गगन गुफा में अजर झरै।
बिन बाजा झनकार उठे जहँ समुझि परै जब ध्यान धरै ॥
बिन ताल जहँ तहँ कंवल फुलाने तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उँजियारी दरसै जहँ तहँ हंसा नजर परै ॥
दसवें द्वारे ताड़ी लागी अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहीं आवै काम क्रोध मद लोभ जरै ॥

जुगुन जुगुन की तृषा बुझानी करम भरम अघ व्याधि टरै।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो अमर होय कबहूँ न मरै॥

(२)

मोको कहाँ ढूँढ़ो बंदे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी ना मैं छुरी गँड़ास में॥
नहीं खाल में नहीं पोंछ में ना हड्डी ना मास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद ना काबे कैलास में॥
ना तो कौनो क्रिया कर्म में नहीं जोग बैराग में।
खोजी होय तुरंते मिलिहौं पल भर की तलास में॥
मैं तो रहौं सहर के बाहर मेरी पुरी मवास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सब साँसों की साँस में॥

(३)

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोले बोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी॥
योगी के योगिनि ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहु के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिनि ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्माग्नी।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो यह सब अकथ कहानी॥

(४)

अपनपो आप ही बिसरो।
जैसे सोनहा काँच मँदिर में भरमत भूकि मरो॥
ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल प्रतिमा देखि परो।
ऐसेहि मदगज फटिक शिला पर दसननि आनि अरो॥

मरकट मुठी स्वाद ना बिसरे घर घर नटत फिरो।
कह कबीर ललनी के सुवना तोहि कौने पकरो॥

(५)

करमगति टारे नाहि टरी।
मुनि वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोध के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को वन में बिपति परी॥
कहं वह फन्द कहाँ मृग पारधि कहँ वह मिरग परी।
सीया को हरि लेगौ रावन सुबरन लंक जरी॥
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप गिरिगिट जोन परी॥
पाँडव जिनके आप सारथी तिन पर बिपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी॥
राहु केतु औ भानु चंद्रमा बिधी सजोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी हो के रही॥

(६)

ऐसी दुनिया भई दिवानी, भक्ति भाव नहि बूझै जी।
कोई आवे तो बेटा माँगे, यही गुसाई दीजे जी॥
कोई आवे दुख का मारा, हम पर किरपा कीजे जी।
कोई आवे तो दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी॥
कोई करावै ब्याह सगाई, सुनत गुसाई रीझै जी॥
साँचे का कोइ गाहक नाहीं, झूठे जगत पतीजे जी॥
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अंधों को क्या कीजे जी॥

(७)

बहुर नहिं आवना या देस।
जो जो गये बहुर नहिं आये पठवत नहिं सन्देस॥

सुर नर मुनि औ पीर औलिया देवी देव गनेस।
धरि धरि जनम सबै भरमें हैं ब्रह्मा विष्णु महेस॥
जोगी जंगम और सन्यासी दीगंबर दरवेस।
चुंडित मुंडित पंडित लोई सरग रसातल सेस॥
ज्ञानी गुनी चतुर औ कविता राजा रंक नरेस।
कोइ रहीम कोइ राम बखाने कोइ कहै आदेस॥
नाना भेख बनाय सबै मिलि ढूँढि फिरे चहुँदेस॥
कहैं कबीर अंत ना पैहो बिन सतगुरु उपदेस॥

(८)

ना जानें तेरा साहेब कैसा।
महजिद भीतर मुल्ला पुकारै क्या साहेब तेरा बहिरा है।
चिउँटी के पग नेवर बाजै सो भी साहब सुनता है॥
पंडित होय के आसन मारै लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी सो भी साहब लखता है॥
ऊंचा नीचा महल बनाया गहरी नेव जमाता है।
चलने का मनसूबा नाहीं रहने को मन करता है॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी गाड़ि जमीं में धरता है।
जेहि लहना है सो लै जैहै पापी बहि बहि मरता है॥
सतवंती को गजी मिलै नहि वेश्या पहिरे खासा है।
जेहि घर साधू भीख न पावै भँडुवा खात बतासा है॥
हीरा पाय परख नहिं जानै कौड़ी परखन करता है।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो हरि जैसे को तैसा है॥

(९)

मुखड़ा क्या देखै दरपन में तेरे दया धरम नहि तन में॥
आम की डार कोइलिया बोलै सुवना बोलै बन में।
घर बारी तो घर में राजी फक्कड़ [illegible] में॥

ऐंठी धोती पाग लपेटी तेल चुआ जुलफन में।
गली गली की सखी रिझाई दाग लगाया तन में॥
पाथर की इक नाव बनाई उतरा चाहै छन में।
कहत कबीर सुनो भाई साधो वे क्या चढ़ि हैं रन में॥

(१०)

नाम सुमिर, पछतायगा।
पापी जियरा लोभ करत है आज काल उठि जायगा॥
लालच लागी जनम गँवाया माया भरम भुलायगा।
धन जोवन का गरब न कीजे कागद ज्यों गलि जायगा॥
जब जम आइ केस गहि पटकै ता दिन कछु न बसायगा।
सुमिरन भजन दया नहि कीन्हीं तो मुख चोटा खायगा॥
धरमराय जब लेखा माँगे क्या मुख लेके जायगा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो साध संग तरि जायगा॥

(११)

जाके नाम न आवत हिये॥
काह भये नर कासि बसे से का गंगा-जल पिये।
काह भये नर जटा बढ़ाये का गुदरी के लिये॥
काह भयो कंठी के बाँधे काह तिलक के दिये।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो नाहक ऐसे जिये॥

(१२)

तोरी गठरी में लागे चोर बटोहिया का रे सोवै॥
पाँच पचीस तीन हैं चोरवा यह सब कीन्हा सोर।
जाग सवेरा बाट अनेरा फिर नहिं लागै जोर॥
भव सागर एक नदी बहत है बिन उतरे जीव बोर।
कहै कबीर सुनो भाई साधो जागत कीजै भोर।

(१३)

सुमिरन बिन गोता खाओगे ॥
मुट्ठी बाँधि गर्भ से आये हाथ पसारे जाओगे ।
जैसे मोती झरत ओस के बेर भये झर जाओगे ॥
जैसे हाट लगावे हटवा सौदा बिन पछताओगे ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो सौदा लेकर जाओगे ॥

(१४)

संतो देखउ जग बौराना ।
साच कहो तो मारन धावै झूठे जग पतियाना ॥
नेमी देखे धरमी देखे प्रात करहि असनाना ।
आतम मारि पखानहि पूजैं उनमें कछू न ज्ञाना ॥
बहुतक देखे पीर औलिया पढ़ैं किताब कुराना ।
कै मुरीद तदबीर बतावैं उनमें उहै गिआना ॥
आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन में बहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे तीरथ गरब भुलाना ॥
माला पहिरे टोपी दीन्हें छाप तिलक अनुमाना ।
साखी सबदै गावत भूले आतम खबरि न जाना ॥
कहै हिन्दू मोहि राम पियारा तुरुक कहै रहिमाना ।
आपस में दोउ लरि लरि मूये मरम न काहू जाना ॥
घर घर मंत्र जे देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना ।
गुरुवा सहित शिष्य सब बूड़े अंतकाल पछताना ॥
कहत कबीर सुनो हो संतो ई सब भरम भुलाना ।
केतिक कहौं कहा नहिं मानै आपहि आप समाना ॥

(१५)

अरे इन दोउन राह न पाइ ।
हिंदू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई ।
वेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदुआई ॥
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई ।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि में करैं सगाई ॥
बाहर से इक मुर्दा लाये धोय धाय चढ़वाई ।
सब सखियाँ मिलि जेवन बैठीं घर भर करैं बड़ाई ॥
हिंदुन को हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई ॥

(१६)

मन न रंगाये रंगाये जोगी कपरा ।
आसन मारि मंदिर में बैठे नाम छाँड़ि पूजन लागे पथरा ॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौलैं दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैलें बकरा ॥
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले काम जराय जोगी बनि गैलें हिजरा ॥
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रंगौलैं गीता बाँच के होइ गैले लबरा ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो जम दरवजवाँ बाँधल जैबे पकरा ॥

(१७)

फूला फूला फिरे जगत में रे मन कैसा नाता रे ।
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा ॥
कहै भाय यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा ॥
पेट पकरि के माता रोवै बाँह पकरि के भाई ॥
लपटि झपटि के तिरिया रोवै हंस अकेला जाई ॥

जब तक जीवैं माता रोवै बहिन रोवै दस मासा ॥
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा ॥
चार गजी चरगजी मंगाया चढ़ा काठ की घोरी ॥
चारो कोने आग लगाया फूँक दिया जस होरी ॥
हाड़ जरै जस लाकड़ी केस जरै जस घासा ॥
सोना ऐसी काया जरि गइ कोइ न आया पासा ॥
घर की तिरिया रोवन लगी ढूंढ़ फिरी चहुँ देसा ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो छाँड़ो जग की आसा ॥

(१८)

जियरा जावगे हम जानी ॥
पाँच तत्त को बनो पीजरा जामें वस्तु बिरानी ॥
आवत जावत कोइ न देखो डूबि गयो बिन पानी ॥
राजा जैहैं रानी जैहैं औ जैहैं अभिमानी ॥
जोग करते जोगी जैहैं कथा सुनते ज्ञानी ॥
पाप पुन्न की हाट लगी है धरम दण्ड दरबानी ॥
पाँच सखी मिलि देखन आई एक से एक सयानी ॥
चंदो जइहैं सुरजो जइहैं जइहैं पवनो पानी ॥
कह कबीर इक भक्त न जइहैं जिनकी मति ठहरानी ॥

(१९)

रमैया की दुलहिन लूटा बजार ।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा तीन लोक मचा हाहाकार ॥
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे नारद मुनि के परी पिछार ॥
सिंगी की मिंगी करि डारी पारासर कै उदर बिदार ॥
कनफूंका चिदकासी लूटे लूटे जोगेसर करत विचार ॥
हम तो बचिगे साहब दया से सब्द डोर गहि उतरे पार ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो इस ठगनी से रहो हुसियार ॥

(२०)

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहे के भरनी कौन तार से बीनी चदरिया ॥
इंगला पिंगला ताना भरनी सुषमन तार से बीनी चदरिया ॥
आठ कवँल दल चरखा डोलै पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया ॥
साँई को सियत मास दस लागे ठोक ठोक के बीनी चदरिया ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया ॥
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

पद्मावती-सौन्दर्य

बेनी छोरि झार जौ केसा। रैनि होइ, जग दीपक लेसा॥
सिर हुँत बिसहर परे भुइँ बारा। सगरौं देस भएउ अँधियारा॥
सकपकाहिं बिष भरे पसारे। लहरि-भरे लहइ कहिं अति कारे॥
जानहुँ लोटहिं चढ़े भुअंगा। बेधे बास मलयगिरि अंगा॥
लुरहिं मुरहिं जनु मानहिं केली। नाग चढ़े मालति कै बेली॥
लहरें देइ जनहु कालिंदी। फिरि फिरि भँवर होय चित-बन्दी॥
चँवर ढुरत आछै चहुँपासा। भँवर न उड़हिं जो लुबुधे वासा॥

होइ अँधियार बीजु धन लौपै, जबहि चीर गहि झाँप।
केस-नाग कित देख मैं, सँवरि सँवरि जिय काँप॥

माँग जो मानिक सेंदुर-रेखा। जनु बसन्त राता जग देखा॥
कै पत्रावलि पाटी पारी। औ रचि चित्र विचित्र सँवारी॥
भए उरेह पुहुप सब नामा। जनु बग बिखरि रहे घनसामा॥
जमुना माँझ सुरसती मंगा। दुहुँ दिसि रही तरंगिनि गंगा॥
सेंदुर-रेख सो ऊपर राती। बीर बहूटिन्ह कै जसि पाँती॥
बलि देवता भए देखि सेंदूरू। पूजै माँग भोर उठि सूरू॥
भोर माँझ रवि होइ जो राता। ओहि रेखा राता होइ गाता॥

बेनी कारी पुहुप लेइ, निकसी जमुना आइ।
पूज चन्द्र आनन्द सौं, सेंदुर सीस चढ़ाइ॥

दुहज लिलार अधिक मनियारा। संकर देखि माथ तहँ धारा ॥
यह नित दुइज जगत सब दीसा। जगत जोहारै देइ असीसा ॥
ससि जो होइ नहि सरवरि छाजै। होइ सो अमावस छपि मन लाजै ॥
तिलक सँवारि जो चुन्नी रची। दुइज माँझ जानहुँ कचपची ॥
ससि पर करवत मारा राहू। नखतन्ह भरा दीन्ह बड़ दाहू ॥
पारस-जोत लिलाटहि ओती। दिस्टि जो करै होइ तेहि जोती ॥
सिरी जो रतन माँग बैठारा। जानहु गगन टूट निसि तारा ॥

ससि औ सूर जो निरमल, तेहि लिलाट के ओप।
निसि दिन दौरि न पूजहिं, पुनि पुनि होहिं अलोप ॥

पद्मावती का सती होना

पद्मावति पुनि पहिरि पटोरी। चली साथ पिउ के होइ जोरी ॥
सूरज छिपा रैन होइ गई। पूनो-ससि, सो अमावस भई ॥
छोरे केस मोति लर छूटीं। जानहुँ रैनि नखत सब टूटीं ॥
सेंदुर परा जो सीस उघारा। आगि लागि चहुँ जग अँधियारा ॥
यही दिवस हौं चाहति, नाहा। चलौं साथ, पिउ ! देहि गलबाहाँ ॥
सारस पंखि न जियै निनारे। हौं तुम्ह बिनु का जियौं, पियारे ॥
नवछावरि कै तन छहरावौं। छार होउँ संग बहुरि न आवौं ॥

दीपक प्रीति पतँग जेउँ, जनम निबाह करेउँ।
नेवछावरि चहुँ पास होइ, कंठ लागि जिय देउँ ॥

नागमती पद्मावति रानी। दुवै महा सत सती बखानी ॥
दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठीं। औ सिवलोक परा तिन्ह दीठीं ॥
बैठौ कोइ राज औ पाटा। अंत सबै बैठे पुनि खाटा ॥
चंदन अगर काठ सर साजा। औ गति देइ चले लेइ राजा ॥
बाजन बाजहिं होइ अगूता। दुवौ कंत लेइ चाहहिं सूता ॥

एक जो बाजा भएउ बियाहू। अब दुसरे होइ ओर-निबाहू ॥
जियत जो करें कंत के आसा। मुएँ रहसि बैठे एक पासा ॥

आज सूर दिन अथवा, आजु रैनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिय, आजु आगि हम्ह जूड़ ॥

सर रचि दान पुन्नि बहु कीन्हा। सात बार फिरि भाँवरि लीन्हा ॥
एक जो भाँवर भई बियाही। अब दुसरे होइ गोहन जाही ॥
जियत: कंत! तुम जोरी। आदि अंत लहि जाइ न छोरी ॥
यह जग काह जो अछहि न आथी। हम तुम, नाह! दुहूँ जग साथी ॥
लेइ सर ऊपर खाट बिछाई। पौंढ़ी दुवौ कंत गर लाई ॥
लागी कंठ आगि देइ होरी। छार भईं जरि अंग न मोरी ॥

रातीं पिउ के गेह गइ, सरग भयउ रतनार।
जो रे उवा, सो अथवा; रहा न कोइ संसार ॥

मीराबाई

पद

(१)

मेरे तो गिरवर गोपाल दूसरो न कोई ।।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु अपनो नहीं कोई ।।
छाँड़ दई कुल की कान क्या करिहै कोई ।
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई ।
चुनरी के किये टूक ओढ़ लीन्ह लोई ।
मोती मूँगे उतार बनमाला पोई ।।
अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई ।
अब तो बेल फैल गई आनन्द फल होई ।।
दूध की मथनियाँ, बड़े प्रेम से बिलोई ।
माखन जब काढ़ लियो, छाछ पियै कोई ।।
आई मैं भगति काज जगत देख मोही ।
दासी मीरा गिरिवर प्रभु तारो अब मोही ।।

(२)

मन रे ! परस हरि के चरन ।
सुभग सीतल कमल-कोमल, त्रिविध-ज्वाला हरन ।।
जे चरन प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरन ।।

जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने सरन ॥
जिन चरन ब्रह्मांड भेट्यो, नखसिखौ श्री भरन ॥
जिन चरन प्रभु परसि लीन्हें, तरी गौतम घरन ॥
जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोपलीला करन ॥
जिन चरन धारयो गोवर्द्धन, गरब मघवा हरन ॥
दास मीरा लाल गिरधर, अगम तारन तरन ॥

(३)

म्हाने चाकर राखो जी,
गिरिधारी लाला चाकर राखो जी ॥

चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं ।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, गोविन्द लीला गासूं ॥१॥

चकरी में दरसन पाऊं, सुमिरन पाऊं खरची ।
भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बाता सरसी ॥२॥

मोर मुकुट पिताम्बर सोहै, गल वैजंती माला ।
वृन्दावन में धेनु चरावै, मोहन मुरलीवाला ॥३॥

ऊँचे ऊँचे महल बनाऊं, बिच बिच राखूं बारी ।
सांवरिया के दरसन पाऊं, पहिर कुसुम्बी सारी ॥४॥

जोगी आया जोग करन कूं, तप करने सन्यासी ।
हरी-भजन कूं साधू आये, वृन्दावन के वासी ।

मीरा के प्रभु गहिर गंभीरा, हृदे रहो जी धीरा ।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हों, जमुना जी के तीरा ॥६॥

(४)

बसो मोरे नैनन में नंदलाल ।
मोहनी मूरत साँवरी सूरत नैना बने विसाल ।
अधर सुधारस मुरली राजति उर वैजन्ती माल ।

छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भगत-बछल गोपाल।

(५)

आली म्हांने लागे बृन्दवन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोविन्द जी को।
निरमल नीर बहत जमुना में भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासण आप विराजे मुकुट धर्यो तुलसी को॥
कुंजन कुंजन फिरत राधिका सबद सुणत मुरली को॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको॥

(६)

जोगी मत जा मत जा मत जा, पाँइ परूं मैं चेरी तेरी हौं।
प्रेम भगति को पैंडा ही न्यारो, हम कूं गैल बता जा।
अगर चंदण की चिता बणाऊं, अपणां हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिलाजा।

(७)

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
का जानूं कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार।
बढ़त छिन छिन घटत पल पल जात न लागे वार।
विरछ के ज्यों पात टूटे, लागे बहुरि न डार।
भौसागर अति जोर कहिये विषम ओखी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा बेगि उतरे पार।
ज्ञान-चौसर मंडी चोहटे सुरत पासा सार।

या दुनिया में रची बाजी जीत भावें हार।
साधु संत महंत ज्ञानी चलत करत पुकार।
दास मीरा लाल गिरधर जीवणा दिन च्यार।

(८)

मेरो मन रामहि राम रटै रे।
राम नाम जप लीजे प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम-जनम के खत जु पुराने, नामहि लेत फटै रे।
कनक कटोरे इम्रत भरियो, पीवत कौन नटै रे।
मीरा कहे प्रभु हरि अविनाशी, तन मन ताहि पटै रे।

(९)

करम गत टारे नाहिं टरे।
सतवादी हरिचंद से राजा, सो तो नीच घर नीर भरे।
पाँच पांडु अरु सती द्रौपदी, हाड हिमाले गरे।
जग्य कियो बलि लेण इन्द्रासन, सो पाताल धरे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, विख से अम्रित करे।

(१०)

पायो जी मैंने राम-रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर करि किरपा अपणायो।
जनम जनम की पूँजी पाई जग में सबै खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर ना लेवै दिन दिन बढ़त कवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुर भवसागर तर आयो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरखि हरखि जस गायो।

(११)

श्री गिरधर आगे नाचूंगी।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊं प्रेमीजन को जाचूंगी।
प्रेम प्रीति की बाँधि घूंघरू सुरत की कछनी काछूंगी।
लोक लाज कुल की मरजादा या में एक न राखूंगी।
पिव के पलँग जा पौढूंगी मीरा हरि रंग राचूंगी।

(१२)

मैं गिरधर के घर जाऊं।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़े तब ही उठि जाऊं भोर भये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके संग खेलूं ज्यूं त्यूं वाहि रिझाऊं।
जो पहिरावै सोई पहिरूं जो दे सोई खाऊं।
मेरी उणकी प्रीति पुराणी उण बिनि पल न रहाऊं।
जहाँ बैठावें तितली बैठूं बेचै तो बिक जाऊं।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर बार बार बलि जाऊं।

(१३)

दरस बिन दूखण लागे नैन।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहुं न पायो चैन।
सबद सुनत मेरी छतियाँ काँपै मीठे मीठे बैन।
बिरह कथा कासूं कहूँ सजनी बह गई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी रैण।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे दुख मेटण सुख दैण।

सूरदास

पद

(१)

चरनकमल बन्दौं हरिराई।
जाकी कृपा पँगु गिरि लंघै, अंधे को सब कछु दरसाई॥
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै, रङ्क चलै सिर छत्र धराई॥
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौं तेहि पाई॥

(२)

अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल!
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महामोह को नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल।
भरम भर्‌यो मन भयो पखावज, चलत कुसङ्गति चाल॥
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दे ताल।
माया को कटि फेंटा बांध्यो, लोभ-तिलक दिय भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल॥

(३)

अपुनपौ आपुन ही बिसरयो।
जैसे स्वान काँच मन्दिर में, भ्रमि भ्रमि भूकि मरयो॥

हरि-सौरभ मृगनाभि बसत है, द्रुम तृन सूँघि मरयो।
ज्यों सुपने में रङ्क भूप भयो, तस करि अरि पकरयो॥
ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देखि कै, आपुन कूप परयो।
जैसे गजलखि फटकि सिला में, दसननि जाय अरयो॥
मरकट मूठि छाँड़ि नहिं दीनीं, घर घर द्वार फिरयो।
सूरदास नलिनी को सुवटा, कहि कौने जकरयो॥

(४)

अब मैं जानी देह बुढ़ानी।
सीस पाँव धर कह्यो न मानत, तनु की दसा सिरानी॥
आन कहत आनै कहि आवत, नाक नैन बह पानी
मिटि गई चमक दमक अङ्ग अङ्ग की, दीठि की दुतिहु हिरानी।
नारी गारी बिन नहिं बोलै, पूत करैं कलकानी
घर में आदर कादर कोसों, खीजत रैनि बिहानी।
नाहिं रही कछु सुधि तन मन की, भई है बात पुरानी
सूरदास अब होत बिगूचन, भजिलै सारङ्ग पानी॥

(५)

प्रभु हौ सब पतितन को टीको।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तो जनमत ही को॥
बधिक अजामिल गनिका तारी, और पूतना ही को।
मोहि छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यों जी को॥
कोउ न समरथ अघ करिबे कों, खैंचि कहत हौं लीको।
मरियत लाज सूर पतितन में, हम हूँ तें को नीको॥

(६)

दो में एकौ तौ न भई।
ना हरि भजे, न गृह-सुख पाये, बृथा बिहाइ गई॥
ठानी हुती और कछु मन में, औरै आनि ठई।
अबिगत गति कछु समुझि परति नहिं, जो कछु करत दई॥
सुत सनेह तिय सकल कुटुम मिलि, निसिदिन हेत खई।
पद-नख-चंद चकोर बिमुख मन, खात अँगार मई॥
विषय-बिकार-दावानल उपज्यो, मोह बयार बई।
भ्रमत भ्रमत बहुतै दुख पायो, अजहुँ न टेव गई॥
कहा होत अब के पछिताये, होनी सिर बितई।
सूरदास सेए न कृपानिधि, जो सुख सकल मई॥

(७)

सबै दिन गये बिषय के हेत।
तीनो पन ऐसे ही बीते, केस भये सिर सेत॥
आँखिन अंध स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत।
गङ्गाजल तजि पियत कूप जल, हरि तजि पूजत प्रेत॥
रामनाम बिनु क्यों छूटोगे, चंद गहे ज्यों केत।
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत॥

(८)

जा दिन मन पछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं॥
घर के कहैं बेगि ही काढ़ो, भूत भये कोउ खैहैं।
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं॥

कहँ वह ताल कहाँ वह सोभा, देखत धूरि उड़ैहैं।
भाइ-बंधु अरु कुटुम कबीला, सुमिरि-सुमिरि पछितैहैं।
बिनु गोपाल कोउ नहि अपनो, जसु-अपजसु रहि जैहैं।
जो सूरज दुरलभ देवन को, सो सतसङ्गति पैहैं॥

(९)

करी गोपाल की सब होई।
जो अपनो पुरुषारथ मानत, अति झूठो है सोई॥
साधन मन्त्र जंत्र उद्यम बल, यह सब डारहु धोई।
जो कछु लिखि राखी नंदनन्दन, मेटि सकै नहिं कोई॥
दुख-सुख लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहि मरत हो रोई।
सूरदास स्वामी करुनामय, स्यामचरण मन पोई॥

(१०)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पुनि जहाज पै आवै।
कमल नैन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
परम गङ्ग को छाँड़ि पियासो, दुर्मति कूप खनावै॥
जिन मधुकर अम्बुजरस चाख्यो, क्यों करील फल भावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥

(११)

हमारे प्रभु औगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो, अब मोहि पार करो॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरो।
जब दोऊ मिलि एक बरन भये, सुरसरि नाम परो॥

इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो।
पारस गुन औगुन नहिं चितवै, कंचन करत खरो॥
यह माया-भ्रम-जाल निवारो, सूरदास सगरो।
अबकी बेर मोहि पार उतारो, नहिं प्रन जात टरो॥

(१२)

आजु हौं एक-एक करि टरि हौं।
कै हमहीं कै तुमहीं माधव, अपुन भरोसे लरिहौं॥
हौं तो पतित सात पीढ़िन को, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं, तुम्हैं बिरद बिनु करिहौं॥
कत अपनी परतीत नसावत, मैं पायो हरि हीरा।
सूर पतित तबहीं लै उठिहै, जब हँसि दैहौ बीरा॥

(१३)

छाँड़ि मन हरि बिमुखन को सङ्ग।
जिनके सङ्ग कुमति नित उपजति, परत भजन में भंङ्ग॥
कहा होत पयपान कराये, विष नहिं तजत भुजङ्ग।
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गङ्ग॥
खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अङ्ग।
गज को कहा न्हवाये सरिता, धरै खेह पुनि छङ्ग॥
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतो करत निखङ्ग।
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रङ्ग॥

(१४)

भावी काहू सों न टरै।
कहँ यह राहु कहाँ रे रबि ससि आनि संयोग परै॥

भारत में भरुही के अंडा, घंटा टूटि परै ॥
गुरु वसिष्ठ पंडित मुनि ज्ञानी, रुचि रुचि लगन धरै ॥
पिता मरन औ हरन सिया को, बन में बिपति परै ॥
हरीचन्द्र से दानी राजा, नीच की टहल करै ॥
तीन लोक भावी के बस में, सुर नर देह धरै ॥
'सूरदास' होनी सो हुइहै, को पचि पचिहिं मरै ॥

(१५)

रे मन मूरख जनम गँवायो।
करि अभिमान विषय सो राच्यो, स्याम सरन नहिं आयो ॥
यह संसार फूल सेंबर को, सुन्दर देखि भुलायो।
चाखन लग्यो रुई उधरानी, हाथ कछू नहिं आयो ॥
कहा भयो अब के मन सोचे, पहले नाहिं कमायो।
कहै 'सूर' भगवंत भजन बिनु सिर धुनि धुनि पछितायो ॥

(१६)

सबै दिन एकहि से नहिं जात।
सुमिरन भगति लेहु करि हरि की जौ लगि तन कुसलात ॥
कबहुँक कमला चपल पाय कै टेढ़ेइ टेढ़े जात।
कबहुँक मग मग धूरि बटोरत भोजन को बिलखात ॥
बालापन खेलत ही खोयो भगति करत अरसात।
'सूर' दास स्वामी के सेवत पैहो परम पद तात ॥

(१७)

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नोनहरामी ॥

भरि भरि उदर विषय को धावौं जैसे सूकर ग्रामी।
हरिजन छाँड़ि हरिविमुखन की निसदिन करत गुलामी॥
पापी कौन बड़ो है मो तें सब पतितन में नामी।
'सूर' पतित को ठौर कहाँ है, सुनिये श्रीपति स्वामी॥

× × ×

(१८)

जसोदा हरि पालने झुलावै॥
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै॥
मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न वेगि सी आवै तोको कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि रहि करि करि सैन बतावै॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ सो नँदभामिनि पावै॥

(१९)

गुपालै माई पालने झुलाए।
सुर मुनि कोटि देव तें तीसौं देखन कौतुक आए॥
जाको अंत न ब्रह्मा जानत सिव सनकादि न पाए।
सो अब देखौ नँद जसोदा हरषि हरषि हलराए॥
हुलसत हुलसि करत किलकारी मन अभिलाष बढ़ाए।
'सूर' स्याम भगतन हित कारन नाना भेस बनाए॥

(२०)

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि-लेप किये॥

चारु कपोल लोल लोचन, गोरोचन तिलक किये।
लट लटकनि मनो मत्त मधुप गन मादक मदहि पिये॥
कठुला कंठ वज्र केहरि-नख राजत रुचिर हिये।
धन्य 'सूर' एकौ पल यह सुख, का सत कल्प जिये॥

(२१)

चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमुक ठुमुक धरनी-धर रेंगत जननिहि खेल दिखावै॥
देहरी लौं चलि जात बहुरि फिरि फिरि इतहीं को आवै।
गिरि गिरि परत बनत नहि नाँघत सुर मुनि सोच करावै।
कोटि ब्रह्माण्ड कर छिन भीतर हरत विलंब न लावै।
ताको लिये नंद की रानी नाना रूप खिलावै॥
तब जसुमति कर टेकि स्याम को क्रम क्रम कै उतरावै।
"सूरदास" प्रभु देखि देखि कै सुर नर बुद्धि भुलावै।

(२२)

कजरी को पय पियहु लला तेरी चोटी बढ़ै।
सब लरिकन में सुन सुन्दर सुत तो श्री अधिक चढ़ै॥
जैसे देखि और ब्रज बालक त्यौं बल बैस बढ़ै।
कंस केसि बक बैरिन के उर अनुदिन अनल डढ़ै॥
यह सुनिकै हरि पीवन लागे, ज्यौं त्यौं लियो पढ़ै।
अंचवत पै ताती जब लाग्यो रोवत जीभ गढ़ै॥
पुनि पीवत हीं कच टकटोवै झूठैं जननि रढ़ै।
'सूर' निरखि मुख हँसत जसोदा सो सुख मुख न कढ़ै॥

(२३)

मैया कबहि बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पिवत भई यह अजहूं है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत पोंछत नागिनि सो भुंइ लोटी।
काचो दूध पिवावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
'सूर' स्याम चिरजिव दोउ भैया हरि हलधर की जोटी।

(२४)

हरि अपने आंगे कछु गावत।
तनक तनक चरनन सों नाचत मनहीं मनहि रिझावत॥
बाँह उँचाइ काजरी धौरी गैयन टेरि बुलावत।
कबहुंक बाबा नंद बुलावत कबहुंक घर में आवत॥
माखन तनक आपने कर लै तनक बदन में नावत।
कबहुं चितै प्रतिबिंब खम्भ में लवनी लिये खवावत॥
दुरि देखत जसुमति यह लीला हरष आनन्द बढ़ावत।
'सूर' स्याम के बाल चरित ये नित देखत मन भावत॥

(२५)

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो॥
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै दै हंसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर॥

तू मोहीं को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत हीं को धूत।
'सूर' स्याम मोहिं गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥

(२६)

कमल नयन कछु करौ बियारी।
लुचुई लपसी सद्य जलेबी सोइ जेवहु जो लगे पियारी॥
घेवर मालपुआ मुतिलाडू सब रस जूठी सरस सँवारी।
उत्तम बरा दाल मसुरी की दधि-बाटी सुंदर रुचि न्यारी॥
आछो दूध औटि धौरी को ल्याई है रोहिनि महतारी।
'सूरदास' बलराम स्याम दोउ जेंवै जननि जाहिं बलिहारी॥

(२७)

मैया ! मैं नाहीं दधि खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो॥
देखि तुही सींके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो॥
मुख दधि पोंछि कहत नँद नंदन दोना पीठि दुरायो।
डारि साँट मुसकाइ तबहिं गहि सुत को कंठ लगायो॥
बाल बिनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप देखायो।
'सूरदास' प्रभु जसुमति के सुख सिव बिरंचि बौरायो॥

(२८)

देखि री हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर एक सैन।

राजिवदल, इन्दीवर, सतदल, कमल, कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहिं वे बिकसत, ये बिकसत दिन राति॥
अरुन सेत सिति झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ।
मनु सरसुति गंगा जमुना मिलि संगम कीन्हो आइ॥
अवलोकिन जलधार तेज अति तहाँ न मन ठहरात॥
'सूर' स्याम लोचन अपार छवि उपमा सुनि सरमात।

× × ×

(२९)

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नँद नंदहिं नाना भाँति नचावति।
राखति एक पाँय ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति।
कोमल अंग आपु आज्ञागुरु कटि टेढ़ी ह्वै जावनि।
अति आधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नारि नवावति।
आपुनि पौढ़ि अधर सेज्या पर कर पल्लव सन पद पलुटावति।
भ्रकुटी कुटिल फरक नासा पुट हम पर कोपि कुपावति।
'सूर, प्रसन्न जानि एकौ छिन अधर सुसीस डोलावति।

(३०)

जब मोहन मुरली अधर धरी।
गृह व्यवहार थके आरजपथ तजत न संक करी॥
पदरिपु पट अटक्यो आतुर ज्यों उलटि पलटि उबरी।
सिवसुत बाहन आय पुकारो मन चित बुद्धि हरी॥
दुरि गये कीर, कपोत, मधुप, पिक, सारँग सुधि बिसरी।
उड़पति, विद्रुम, बिम्ब खिसान्यो दामिनि अधिक डरी॥

निरखे स्याम पतंग सुता तट आनँद उमंग भरी।
'सूरदास' प्रभु प्रीति परस्पर प्रेम प्रवाह परी॥

(३१)

बिलग जनि मानहु ऊधो प्यारे।
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहि ते कारे॥
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे॥
मानहु नील माट तें काढ़े लै जमुना जु पखारे।
ता गुन स्याम भई कालिन्दी 'सूर' स्याम गुन न्यारे॥

(३२)

अँखिया हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप रस राँची ये बतियाँ सुनि रुखी॥
अवधि गनत, इक टक मग जोवत तब एती नहि झूँखी।
अब इन जोग सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी॥
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
'सूर' सिसकत हठि नाव चलाओ ये सरिता हैं सूखी॥

(३३)

निर्गुन कौन देश के बासी।
मधुकर! हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साँच न हाँसी॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी।
कैसो बरन भेस है कैसो केहि रस में अभिलासी॥
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो 'सूर' सबै मति नासी॥

(३४)

तौ हम मानै बात तुम्हारी।
अपनो ब्रह्म दिखावहु ऊधो मुकुट पिताम्बर धारी॥
भजिहैं तब ताको सब गोपी सहि रहिहैं बरु गारी।
भूत समान बतावत हमको जारहु स्याम बिसारी॥
जे मुख सदा सुधा अंचवत हैं ते विष क्यों अधिकारी।
'सूरदास' प्रभु एक अङ्ग पर रीझि रही ब्रजनारी॥

(३५)

बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल अब भईं विषय ज्वाल की पुंजैं॥
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं।
पवन, पानि, घनसार, सजीवनि, दधिसुत किरन भानु भईं भुंजैं॥
ये ऊधो कहियो माधव सों बिरह बिरद कर मारत लुंजैं।
'सूरदास' प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भईं बरन ज्यों गूंजैं॥

(३६)

संदेसनि मधुकर कूप भरे।
जे कोइ पथिक गये हैं ह्याँते फिर नहि अवन करे॥
कै वै स्याम सिखाय समोधे कै वै बीच मरे।
अपने नहिं पठवत नंदनंदन हमरेउ फेरि धरे॥
मसि खूंटी, कागर जल भीजे, सर दौ लागि जरे।
पाती लिखैं कहो क्योंकरि जो पलक कपाट अरे॥

(३७)

मधुबनियाँ लोगनि को पतिआय।
मुख औरै अंतरगत औरै पतियाँ लिखि पठवत हैं बनाय॥
ज्यों कोइलसुत काग जिआवत भाव भगति भोजनहिं खवाय।
कुहू कुहाय आये बसन्त ऋतु अन्त मिलै कुलअपने जाय॥
जैसे मधुकर पुहुप बास लै फेरि न बूझै बातहु आय।
'सूर' जहाँ लौ स्यामगात हैं तिनसों क्यों कीजिये लगाय॥

(३८)

उर में माखन चोर गड़े।
अब कैसहुँ निकसत नहिं ऊधो तिरछे ह्वै जु अड़े॥
जदपि अहीर जसोदानंदन तदपि न जात छड़े।
यहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहि न लगत बड़े॥
को बसुदेव देवकी वै को, न जानें बूझै।
'सूर' स्यामसुन्दर बिनु देखे और न कोऊ सूझै॥

(३९)

दूर करहु बीना कर धरिबो।
मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो नाहिन होत चन्द को ढरिबो॥
बीती जाहि पै सोई जानै कठिन है प्रेम पास को परिबो।
जब तें बिछुरे कमल नयन सखि, रहत न नयन नीर को गरिबो॥
सीतल चंद अगिनि सम लागत कहिये धरो कौन बिधि धरिबो।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सब झूठो जतननि को करिबो॥

(४०)

ऊधो ब्रज में पैंठ करी।
यह निरगुन निमूंल गाँठरी अब किन करहु खरी।
नफा जानि कै ह्याँ लै आए सबै वस्तु अंकरी।
यह सौदा तुम ह्वाँ लै बेंचो जहाँ बड़ी नगरी॥
हम ग्वालिन, गोरस दधि बेंचौ लेहिं अबै सबरी।
'सूर' यहाँ कोउ गाहक नाहीं देखियत गरे परी॥

(४१)

ऊधो जाहु तुम्हें हम जाने।
स्याम तुम्हे ह्याँ नाहिं पठाये तुम हौ बीच भुलाने॥
ब्रजबासिन सों जोग कहत हौ बातहु कहत न जाने।
बड़ लागै न बिबेक तुम्हारो ऐसे नये अयाने॥
हम सों कही लई सो सहि कै जिय गुनि लेहु अपाने।
कहँ अबला कहँ दसा दिगम्बर सँमुख करो पहिचाने॥
साँच कहो तुमको अपनी सौं बूझति बात निदाने।
'सूर' स्याम जब तुम्हें पठाये तब नेकहु मुसकाने॥

(४२)

तबते इन सबहिन सचु पायो।
जबते हरि सन्देस तिहारो सुनत तवाँरो आयो॥
फूले व्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो।
फूले मिरगा चौंकि चग्वन ते हुते जो बन बिसरायो॥
ऊँचे बैठि विहँग सभा बिच कोकिल मङ्गल गायो।

निकसि कन्दरा ते केहरि हू माथे पूँछ हिलायो ॥
गह्वर ते गजराज निकसि कै अँग अँग गर्व जनायो ।
'सूर' बहुरिहौ कह राधा कै करिहौ बैरिन भायो ॥

(४३)

ऊधो मन नाहीं दस बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधै ईस ॥
भईं अति शिथिल सबै माधव बिनु । यथा देह बिनु सीस ।
स्वासा अटकि रहे आसा लगि जीवहिं कोटि बरीस ॥
तुम तो सखा स्याम सुन्दर के सकल जोग के ईस ।
'सूरदास' रसिक की बतियाँ पुरवौ मन जगदीस ॥

(४४)

आजु घनस्याम की अनुहारि ।
उनै आये साँवरे सखि लेहि रूप निहारि ॥
इन्द्र धनुष मनो पीत बसन छबि दामिनि दसन बिचारि ।
जनु बगपाँति माल मोतिन की चितवत चित लें हारि ॥
गरजत गगन गिरा गोबिन्द की सुनत नयन भरे बारि ।
सूरदास गुन सुमिरि स्याम के बिकल भईं ब्रजनारि ॥

(४५)

निस दिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब तें स्याम सिधारे ॥
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ उर कपोल भये कारे ।
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी उर बिच बहत पनारे ॥

'सूरदास' प्रभु अम्बु बढ़्यो है गोकुल लेहु गवारे।
कहँ लौं कहौं स्याम घन सुन्दर विकल होत अति भारे॥

(४६)

ऊधो मन माने की बात।
दाख छुहारा छाँड़ि अमृत फल विष-कीरा विष खात॥
जौ चकोर को दे कपूर कोउ तजि अँगार न अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ में बँधत कमल के पात॥
ज्यों पतग हित जानि आपनो दीपक सों लपटात।
'सूरदास' जाको मन जासों सोई ताहि सुहात॥

(४७)

कहत किन परदेसी की बात।
मन्दिर अरध अवधि हरि बदि गये हरि अहार चलि जात।
ससि रिपु बरष, भानु रिपु जुग सम, हरि रिपु किये फिरै घात।
मघ-पंचम ले गये स्यामघन ताते जिय अकुलात॥
नखत, वेद, ग्रह जोरि अरध करि को बरजै हमें खात।
'सूरदास' प्रभु तुमहि मिलन को कर मीड़त पछितात॥

गोस्वामी तुलसीदास

रामायण से

(१)

नाम बन्दना

बन्दउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥
महामन्त्र जेहि जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जानि गन राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
जान आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपति सदा पिय संग भवानी।'
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥
नाम प्रभाउ जानि सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को॥

बरषा रितु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
रामनाम बर बरन जुग, सावन भादव मास॥

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन ! बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन॥

स्वाद तोप सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥
जन मन मञ्जु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥

एक छत्रु एक मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥
राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरेहुँ, जौं चाहसि उजियार॥

(२)

रामचरितमानस-महिमा

राम चरित मानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइय बिश्रामा॥
मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहि सर परई॥
रामचरित मानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कलि कलुष नसावन॥
सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥
रामसीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मञ्जु मनि सीप सुहाई॥
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरङ्ग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरन्द सुबासा॥
सुकृत पुञ्ज मञ्जुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती॥
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिज्ञान बिचारी॥

नव रस जप तप जोग बिरागा । ते सब जल चर चारु तड़ागा ॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना । ते बिचित्र जल बिहंग समाना ॥
सँत सभा चहुँ दिसि अँवराई । श्रद्धा रितु बसन्त सम गाई ॥
भगति निरूपन बिबिध बिधाना । छमा दया दम लता बिताना ॥
सम जम नियम फूल फल ज्ञाना । हरिपद रति रस बेद बखाना ॥
औरउ कथा अनेक प्रसङ्गा । तेइ सुक पिक बहु बरन बिहँगा ॥

पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु ।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु ॥

(३)

कामदेव का प्रताप

अस कहि चलेहु सबहिं सिरु नाई । सुमन धनुष कर सहित सहाई ॥
चलत मार अस हृदय बिचारा । सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा ॥
तब आपन प्रभाउ बिस्तारा । निजबस कीन्ह सकल संसारा ॥
कोपेउ जबहिं बारिचर केतू । छन महँ मिटे सकल श्रुति सेतू ॥
ब्रह्मचर्य ब्रत संजम नाना । धीरज धरम ज्ञान बिज्ञाना ॥
सदाचार जप जोग बिरागा । सभय बिबेक कटकु सबु भागा ॥

भागेउ बिबेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे ।
सद्ग्रंथ पर्वत कंदरन्हि महिं जाइ तेहि अवसर दुरे ॥
होनहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा ।
दुइमाथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा ॥

जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि, भए सकल बस काम॥

सबके हृदय मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा॥
नदी उमगि अम्बुधि कहँ धाई। सङ्गम करहिं तलाव तलाई॥
जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी॥ भये काम बस समय बिसारी॥
मदन अन्ध ब्याकुल सब लोका। निसि दिन नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किन्नर ब्याला! प्रेत पिसाच भूत बेताला॥
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि काम बस भए बियोगी॥

भए कामबस जोगीस तापस पाँवरन्हि की को कहे।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्म मय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुष मय जगु पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥

धरी न काहू धीर, सबके मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महं॥

(४)

राम-जन्म और उनका स्वरूप

भए प्रगट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनिमन हारी अद्भुत रूप निहारी॥

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन वनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौ अनन्ता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनन्ता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति सन्ता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकन्ता॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा।
यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

बिप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार॥

(५)

पार्वती-प्रार्थना

जय जय गिरिवर राजकिसोरी। जय महेस मुख चन्द चकोरी॥
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता॥

नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेद नहिं जाना॥
भय भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥

पति देवता सुतिय महुँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि, सहस सारदा सेष॥

(६)

राम का विराट-स्वरूप

जा की रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥
देखहि भूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा॥
पुर बासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥

नारि बिलोकहि हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप॥

बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित बिदेह बिलोकहि रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरि भगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥
रामहिं चितव भायं जेहि सीया। सो सनेह सुखु नहिं कथनीया॥

(७)

पति ही स्त्री का सर्वस्व है

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सास ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहं लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनि ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राथना न तुम्ह बिन जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुं कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदनु निहारे॥

खग मृग परिजन नगरु बनु, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुखमूल॥

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सास ससुर सम सारा॥
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु संग मंजु मनोज तुराई॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जनु कोकी॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

अस जियं जानि सुजान सिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाँड़िय जनि ॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय उर अन्तरजामी ॥

राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत न जनिअहिं प्रान ।
दीनबन्धु सुंदर सुखद, सील सनेह निधान ॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥
सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं । मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ॥
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं । करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ॥
श्रमकन सहित स्याम तनु देखें । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें ॥
सम महि तृन तरु पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि तात बयारि न मोही ॥
को प्रभु संग मोहि चितवन हारा । सिंह बधुहिं जिमि ससक सियारा ॥

(८)

सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश

धीरज धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदुबानी ॥
तात तुम्हारि मातु वैदेही । पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
अवध तहाँ जह राम निवासू । तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥
जौ पै सीय रामु बन जाहीं । अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥
गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं । सेइअहि सकल प्रान कीनाईं ॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के । स्वारथ रहित सखा सबही के ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें । सब मानिअहिं राम के नातें ॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू । लेहु तात जग जीवन लाहू ॥

भूरि भाग भाजनु भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छलु, कीन्ह रामपद ठाउं ॥

पुत्रवती जुबती जग सोई । रघुपति भगतु जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी । राम बिमुख सुत तें हित जानी ॥
तुम्हरेहिं भाग राम बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । राम सीय पद सहज सनेहू ॥
राग रोष इरिषा मदु मोहू । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू । संग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहिं न राम बन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥

उपदेसु यह जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं ।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी प्रभुहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिस दई ।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

(९)

संसार की निर्मूलता

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥
जोग, वियोग भोग भल मन्दा । हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा ॥
जनम मरन जहं लगि जगजालू । सम्पति बिपति करमु अरु कालू ॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू । सरग नरक जहँ लगि ब्यवहारू ॥
देखिअ सुनिय गुनिअ मन माहीं । मोह मूल परमारथु नाहीं ॥

सपने होइ भिखारि नृप, रंकु नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥

अस विचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू ॥
मोह निसा सब सोवनि हारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपञ्च बियोगी ॥
जागिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा ॥
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू ॥

(१०)

तीरथराज प्रयाग का वर्णन

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू ॥
छेत्रु अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा ॥
संगमु सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अखयबटु मुनि मन मोहा ॥
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा ॥

सेवहिं सुकृती साधु सुचि, पावहिं सब मनकाम।
बन्दी बेद पुरान गन, कहहिं बिमल गुनग्राम ॥

(११)

भगवान के रहने का स्थान

बालमीकि हंसि कहहि बहोरी। बानी मधुर अमिय रस बोरी ॥
सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लषन समेता ॥

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बन्धु सिय सह रघुनायक॥

जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुनगन चुनइ, राम बसहु हियँ तासु॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेखी।
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहि दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं॥
मंत्र राजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहि तुम्हहि सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाय सेवहि मन मानी॥

सबु करि मागहिं एक फल, रामचरन रति होउ।
तिन्ह के मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।

कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसर नाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।
जननी सम जानहिं पर नारी । धनु पराव बिष ते बिष भारी ॥
जे हरषहिं पर सम्पति देखी । दुखित होहिं पर बिपति बिसेखी ॥
तिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे । तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम्ह तात ।
मन मन्दिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं । बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहिं रहहि उर लाई । तेहि के हृदय रहहु रघुराइ ॥
सरगु ।नरकु अपबरगु समाना । जहँ तहँ देख धरें धनुबाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहि के उर डेरा ॥
जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो राउर निज गेहु ॥

शोचनीय पुरुष के लक्षण

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलख कहेहु मुनि नाथ ।
हानि लाभु जीवनु मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ ॥

अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोग दसरथ नृप नाहीं॥
सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिय सूद्र बिप्र अपमानी। मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी॥
सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

सोचिय गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग।
सोचिय जती प्रपंचरत, बिगत बिबेक बिराग॥

बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥
सब बिधि सोचिय पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरिजन होई॥

(१३)

भरत की तपस्या

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़ भागी॥

राम प्रेम भाजन भरत, बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहियत, टेक बिबेक बिभूति॥

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुख छबि सोई॥
नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥
धव बिस्वास अवधि राकासी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥
रामप्रेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥
भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गम नाहीं॥

नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करति, राज काज बहु भाँति॥

(१४)

स्त्री-धर्म

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरुनारी। आपद काल परखिअहिं चारी॥
बृद्ध रोगबस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाँड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होई पाइ तरुनाई॥

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावति श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥

(१५)

नवधा भक्ति

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुनगन, करइ कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहिमय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना॥

(१६)

सच्ची मित्रता

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥
जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥
आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई॥

(१७)

वर्षा-वर्णन

बरषा काल मेघ नभ छाये। गरजत लागत परम सुहाये॥
लछिमन देखहु मोरगन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, बिष्नु भगत कहुँ देखि॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिन दमक रही घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बरषहि जलद भूमि नियराएँ। जथा नवहि बुध बिद्या पाएं॥
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे
क्षुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥
भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥
समिटि समिटि जल भरहि तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहि आवा॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परहिं नहि पंथ।
जिमि पाखंड बिवाद ते, गुप्त होहि सद्ग्रन्थ॥

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढ़हि जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिवेका॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥

खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥
ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥
महावृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥
देखिअत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हर जन हियँ उपज न कामा॥
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रियगन उपजे ग्याना॥

कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के ऊपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसँग सुसँग॥

(१८)

शरद्-वर्णन

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये॥
पंक न रेनु सोह अस धरनी। नीति निपुन नृप कै जस करनी॥

जल संकोच बिकल भई मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥

चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि॥

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग रव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥
देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किए कुल नासा॥

भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिले जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ॥

(१६)

विजय-रथ

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना।
सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥

बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन को दंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुरपूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥

महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर ॥

(२०)

रामराज

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
चारिउ चरन धर्म जगमाहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परमगति के अधिकारी ॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥
सब निर्दंभ धर्मरत गुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिं ॥
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिं ॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिर एहि चरित तिन्हहु रति मानी॥
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिवर दम सीला॥
रामराज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नरनारी॥
एक नारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिय अस, रामचन्द्र के राज॥

फूलहिं फरहि सदा तरु कानन। रहहि एक संग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहि अनंदा॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥
लता बिटप मागे मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी॥
प्रगटी गिरिन्ह बिबिध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहि रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दसा बिभागा॥

बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहि जल, रामचन्द्र के राज॥

(२१)

सन्त के लक्षण

संत असंतन्हि कै अस करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥

तातें सुर सीसन्ह चढ़त, जग वल्लभ श्री खंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड ॥

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर ॥
समदम नियम नीतिनहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुनमंदिर सुखपुंज ॥

(२२)

असन्त के लक्षण

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिअ न काऊ ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई ॥
खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मनायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूट चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइँ महा अति हृदय कठोरा॥

परद्रोही पर दार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू के देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरिकथा न भावा॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी॥
बिप्रद्रोह परद्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा॥

ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहहिं कलिजुग माहिं॥

(२३)

कलियुग का धर्म

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सदग्रन्थ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि, प्रगट किये बहु पन्थ॥

बरन धर्म नहि आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहि मान निगम अनुसासन॥

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पण्डित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ताकहुँ संत कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो पर धन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी बिरागी।
जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

असुभ बेस भूषन धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माहिं॥
जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मनक्रम बचन लबार, तेइ बकता कलिकाल महुँ॥

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहि ग्याना। मेलि जनेऊ लेहि कुदाना॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी॥
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहि नारि परपुरुष अभागी॥
सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नवीना॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहि देखा॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महुँ परई॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहि। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥

ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर, कहहि न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं बिप्र गुरु घात॥

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्हते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि।।

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।।
तेइ अभेदवादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलियुग कर।।
आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहु सत मारग प्रतिपालहि।।
कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका।।
जो बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।।
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी।।
ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहि। उभय लोक निज हाथ नसावहि।।
विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी।।
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।।
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा।।

भए बरनसंकर कलि, भिन्न सेतु सब लोग।
करहि पाप पावहि दुख, भय रुज सोक बियोग।।
श्रुति संमत हरि भक्ति पथ, संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहि नर मोह बस, कल्पहि पंथ अनेक।।

बहु दाम सँवारहि धाम जती। विषया हरि लीन्हि न रहि बिरती।।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही।।
कुलवंत निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती।।
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं।।
ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुम्ब भये तब ते।।

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं॥
धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥
नहि मान पुरानन बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो॥
कवि बृन्द उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक बात न कोपि गुनी॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥

सुनु खगेस कलि कपट हठ, दंभ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि मद, व्यापि रहे ब्रह्मंड॥
तामस धर्म करहिं नर, जपतप ब्रत मख दान।
देव न बरषहि धरनी, बए न जामहि धान॥

अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारन हीं॥
लघु जीवन संबतु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा॥
कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहि मानत कोउ अनुजा तनुजा
नहि तोष बिचारन सीतलता। सब जाति कुजाति भए मँगता॥
इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥
सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गये॥
दम दान दया नहिं जान पनी। जड़ता पर बंचनताऽति घनी॥
तनु पोषक नारि नरा सगरे। पर निंदक जे जग मो बगरे॥

(२४)

भक्ति की महिमा

राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती॥

मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अविद्यातम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहि जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥
राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके॥
चतुर सिरोमनि तेइ जगमाहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। रामकृपा बिनु नहि कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहि भट भेरे॥
पावन पर्वत बेद पुराना। रामकथा रुचिरा कर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥
राम सिंधु धन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥
अस बिचार जोइ कर सतसंगा। रामभगति तेहि सुलभ बिहंगा॥

ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं, भगति मधुरता जाहिं॥
बिरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरिभगति, देखु खगेस बिचारि॥

(२५)

परमार्थ के कुछ प्रश्न और उनके उत्तर

प्रथमहिं कहहु नाथ मति धीरा। सबते दुर्लभ कवन सरीरा॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी॥

संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥
मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्वग्य कृपा अधिकाई॥
नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषयरत मंद मंद तर॥
कांच किरिच बदले ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं॥
नहिं दरिद्र सम दुख जगमाहीं। संतमिलन सम सुख जग नाहीं॥
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥
संत सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी॥
भूर्ज तरु सम संत कृपाला। परहित निति सह बिपति बिसाला॥
सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥
पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं॥
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥
संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा॥
हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि॥
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥
होहिं उलूक संत निंदारत। मोहनिसा प्रिय ग्यान भानु गत॥
सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जो तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥
ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥
परसुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥
अहंकार अति दुखद डमरूआ। दंभ कपट मद मान नेहरूआ॥
तृस्ना उदर बृद्धि अति भारी। त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥

एक ब्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहँ, सो किमि लहै समाधि॥

रामकृपा नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥
जानिअ तब मन बिरुज गोसाईं। जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥
बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥

(२६)

कलिकाल में मुक्ति साधन

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहि॥

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहि नहि पाई॥

मो सम दीन न दीनहित, तुम्ह समान रघुवीर॥
अस बिचारि रघुवंस मनि, हरहु विषम भवभीर॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम॥
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

(२७)

सूक्तियाँ

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा।
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥
जेहि कै जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥
जो लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥
हमहुँ कहबि अब ठकुर सुहाती। नाहि त मौन रहब दिनु राती।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥
अरिबस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥
दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं ॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥
नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं ॥
भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्बभाव छल त्यागी ॥
देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई ॥
सोइ गुनग्य सोई बड़ भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी
लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ विधाता ॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥
बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊं। परम चतुर मैं जानत अहऊं ॥
बड़े भाग पाइय सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भवभंगा ॥
परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहि अधमाई ॥
एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई ॥
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चन्दन तें होई ॥
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह कै करनी ॥

(२८)

विनय-पत्रिका

श्री रामचन्द्र कृपालु भजुमन, हरन भवभय दारुनं।
नवकंज-लोचन, कंजमुख, करकंज, पदकंजारुनं ॥
कंदर्प अगनित-अमित छबि, नवनील नीरद सुन्दरं।
पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक-सुतावरं ॥
भजु दीन बन्धु दिनेस दानव दैत्य-बंस निकंदनं।
रघुनंद आनंद कंद कोमलचंद दसरथ-नन्दनं ॥

सिर मुकुट, कुण्डल तिलक चारु, उदारु अंग विभूषनं ।
आजानुभुज, सर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषनं ॥
इति वदति तुलसीदास संकर-सेष-मुनि-मन-रंजनं ।
मम हृदय-कंज निवास करु, कामादि-खल-दल-गंजनं ॥

(२९)

सुन मन मूढ़ ! सिखावन मेरो ।
हरिपद-विमुख लह्यो न काहु सुख, सठ यह समुझ सबेरो ॥
बिछुरे ससि रवि मम नैननि तें, पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत स्रमित निसि-दिवस गगनमहं, तहं रिपु राहु बड़ेरो ॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, स्रुति सन्देह निबेरो ।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि कर, होहु राम कर चेरो ॥

(३०)

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि राम भगति सुरसरिता आस करत ओसकन की ॥
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृसित जानि मति घन की ।
नहिं तहं सीतलता न बारि, पुनि हानि होत लोचन की ॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़, छाँह आपने तनकी ।
टूटत अति, आतुर अहार बस, छति बिसार आनन की ॥
कहँ लों कहौं कुचाल कृपा निधि, जानत हौ गति मन की ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पनकी ॥

(३१)

हरि, तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन-धाम बिबुध दुरलभ तन, मोहि कृपा करि दीन्हों ॥

कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के, एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार॥
विषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं, होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥
कृपा डोरि, बनसी पद-अंकुस, परम प्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम निहारो॥
है स्रुति बिदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यह जीव मोह-रजु, जोइ बाँध्यो सोइ छोरै॥

(३२)

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं।

राम कृपा भव-निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं॥
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर कर ते न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पन कै तुलसी, रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥

(३३)

केसव कहि न जाइ का कहिये।

देखत तव रचना बिचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिये॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरै भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबन्ध कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै॥

(३४)

माधव असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया॥
सुनिय गुनिय, समुझिय, समुझाइय, दसा हृदय नहि आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित भव, दारुन बिपति सतावै।
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो, पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल-रूप बिषय, कारन निसिबासर धावै॥
जेहि के भवन बिमल चिन्तामनि, सो कत काँच बटारै।
सपने परबस परै जागि, देखत केहि जाइ निहोरै॥
ग्यान भक्ति स धन अनेक, सब सत्य, झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माही॥

(३५)

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहं प्रभु न बहुत जिय जानी॥
जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पंह लीन्हीं।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्ही॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो॥

(३६)

माधव मोह-पास क्यों टूटै।
बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यन्तर ग्रन्थि न छूटै॥
घृत पूरन कराह अन्तरगत, ससि प्रतिबिम्ब दिखावै।
ईंधन अनल लगाय कल्पसत, औटत नास न पावै॥

तरु कोटर महँ बस बिहँग, तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय बिचार-हीन-मन, सुद्ध होइ नहिं तैसे॥
अंतर मलिन, बिषय मन अति, तन पावन करिय पखारे।
मरइ न उरग अनेक जतन, बलमीकि बिबिध बिधि मारे॥
तुलसिदास हरि गुरु-करुना बिनु, बिमल बिवेक न होई।
बिनु बिवेक संसार घोर-निधि, पार न पावै कोई॥

(३७)

जो मोहि राम लागते मीठे।
तौ नव-रस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे॥
बंचक बिषय बिबिध तनु धरि, अनुभवे सुने अरु डीठे।
यह जानत हौं हृदय आपने, सपने न अघाइ उबीठे॥
तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल, बचन कहत अति ढीठे।
नाम की लाज राम करुनाकर, केहि न दिये कर चीठे॥

(३८)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें, संत-स्वभाव गहौंगो॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम, बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि; तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहि दोष कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि-भक्ति लहौंगो॥

(६६)

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी ॥
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भये मुद-मंगलकारी ।
नाते नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ॥
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो ॥

(४०)

जो पै रहनि राम सों नाहीं ।
तौ नर खर कूकर सूकर सम, वृथा जियत जग माहीं ॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय भूख प्यास सबही के ।
मनुज देह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिय-पी के ॥
सूर, सुजान, सुपूत, सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।
बिनु हरिभजन इनारुन के फल तजत नहीं करुआई ॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने ।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस, सालन साग अलोने ।

(४१)

कौन जतन बिनती करिये ।
निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ॥
जेहि साधन हरि-द्रवहु जानि जन, सो हठि परिहरिये ।
जाते बिपति-जाल निसिदिन दुख, तेहि पथ अनुसरिये ॥
जानत हूँ मन बचन करम, परहित कीन्हें तरिये ।
सो बिपरीत देखि पर सुख, बिनु कारन ही जरिये ॥
श्रुति पुरान सब को मत यह, सतसंग सुदृढ़ धरिये ।
निज अभिमान मोह ईर्षा बस, तिनहि न आदरिये ॥

संतत सोइ प्रिय मोहिं सदा, जातें भवनिधि परिये।
कहौ नाथ अब, कौन बल तें, संसार-सोक हरिये॥
जब कब निज करुना सुभाव तें, द्रवहु तौ निस्तरिये।
तुलसिदास बिस्वास आन नहिं, कत पचि पचि मरिये॥

(४२)

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते॥
सहस बाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहि तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥
अब नाथहि अनुराग जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते॥

(४३)

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी॥१॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो?
मो समान आरत नहिं, आरत हरि तोसो॥२॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा तू सब बिधि हितु मेरो॥३॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै!
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन सरन पावै॥

(४४)

जो निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति दुख संसय सोक अपारा॥१॥

सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनिये, मन कीन्हे बरि आई।
त्यागन गहन उपेच्छनीय, अहि हाटक तृन की नाई ॥२॥
असन, बसन, पसु, बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महँ रह जैसे।
सरग नरक चर अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे ॥३॥
बिटप-मध्य पुतरिका, सूत महँ कंचुकि बिनहि बनाये।
मन महं तथा लीन नाना तनु प्रगटत अवसर पाये ॥४॥
रघुपति-भक्ति-बारि-छालितचित बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसीदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै ॥५॥

कवितावली रामायण

(४५)

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-बिमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से ॥
'तुलसी' मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे।

(४६)

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन, कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकै दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी' मन-मन्दिर में बिहरैं॥

(४७)

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि, मंजु बनी मनि माल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं पुलकैं नृप गोद लिये॥

अरविंद सो आनन, रूप मरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये।
मन मों न बस्यो अस बालक जो 'तुलसी' जग में फल कौन जिये॥

(४८)

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी' मन मन्दिर में बिहरैं॥

(४९)

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लों जल-थाह दिखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिय मोहिं, बिना पग धोये हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥

(५०)

रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥

(५१)

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर,
दिन दिन बिकल सकल सुख-राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो॥

राम की रजाय ते रसायनो समीर- सूनु,
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक मो।
जातुधान बुट, पुटपाक लंक जात रूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो।

(५२)

सुत, दार, अगार, सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सब की ममता तजि कै, समता सजि संत सभा न बिराजहि रे॥
नर देह कहा करि देखु बिचार, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलति लोलुप कूकर ज्यों, "तुलसी" भजु कोसलराजहि रे॥

(५३)

राम है मातु पिता गुरु बंधु औ संगी सखा सुत स्वर्मी सनेही।
राम की सौहं, भरोसो है राम को, राम रंग्यो रुचि रांच्यो न केही॥
जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जियै जग में 'तुलसी' न तु डोलत और मुये धरि देही॥

(५४)

काम से रूप, प्रताप दिनेस से, सोम से सील, गनेस से माने।
हरिचंद से साँचे, बड़े बिधि से, मघवा से महीप बिषै-सुख साने॥
सुक से मुनि, सारद से बकता, चिर जिवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भये तौ कहा 'तुलसी' जुपै राजिवलोचन राम न जाने॥

(५५)

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मद अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते॥

भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भये तो कहा 'तुलसी' जुपै जानकी नाथ के रंग न राते॥

(५६)

न मिटै भव संकट दुर्घट है, तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूठ जटो॥
नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।
'तुलसी' जो सदा सुख चाहिय तो रसना निसिबासर राम रटो॥

(५७)

राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कवि-कोकिल हू की।
नामहि ते गज को, गनिका की, अजामिल की चलिगै चल-चूकी॥
नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडु बधू की।
ताको भलो अजहूं 'तुलसी' जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की॥

(५८)

भागीरथी जलपान करों अरु नाम द्वै राम के लेत नितैहों।
मोको न लेनो न देनो कछू कलि! भूलि न रावरी ओर चितैहों॥
जानि के जोर करौ परिनाम, तुम्है पछितैहो पै मैं न भितैहों।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि, हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं॥

(५९)

जहाँ बन पावनो, सुहावनो बिहङ्ग मृग,
देखि अति लागत आनन्द खेत खूंट सो।
सीता राम लषन निवास, बास मुनिन को,
सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक बूंट सो॥

झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनी मंजुल महेस जटाजूट सो।
'तुलसी' जौ राम सों सनेह सांचो चाहिये,
तौ सेइये सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो॥

(६०)

पिंगल जटा कलाप, माथे पै पुनीत आप,
पावक नैना, प्रताप भ्रू पर बरत हैं।
लोचन बिसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल,
कंठ काल कूट, ब्याल भूषन धरत हैं॥
सुन्दर दिगम्बर बिभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृंगी पूरे काल-कंटक हरत हैं।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं॥

(६१)

लोकबेद हू बिदित बारानसी की बड़ाई,
बासी नरनारि ईस-अंबिका-सरूप हैं।
कालनाथ कोतवाल, दंड कारि दंड पानि,
सभासद गनप से अमित अनूप हैं॥
तहाँऊ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं,
जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं।
फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल,
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं॥

(६२)

रामनाम मातु-पितु, स्वामि, समरथ हितु,

आस राम-नाम की, भरासो रामनाम को।

प्रेम रामनाम ही सो, नेम रामनाम ही को,

जानौं न मरम पद दाहिनों न बाम को॥

स्वारथ सकल, परमारथ को रामनाम,

रामनाम हीन 'तुलसी' न काहू काम को।

राम की सपथ, सरबस मेरे रामनाम,

कामधेनु कामतरु मो-से-छीन-छाम को॥

नन्ददास

भ्रमर गीत से

(१)

ऊधव को उपदेश सुनो ब्रज नागरी,
    रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी।
प्रेम धुजा रस रूपिनी उपजावनि सुख पुंज,
    सुन्दर स्याम विलासिनी नव बृन्दावन कुंज।
        सुनो ब्रज नागरी॥

(२)

सुनत स्याम को नाम ग्राम गृह की सुधि भूली,
    भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली।
पुलकि रोम सब अङ्ग भये भरि आये जल नैन,
    कंठ घुटे गदगद गिरा बोले जात न बैन।
        व्यवस्था प्रेम की॥

(३)

वै तुमते नहिं दूर ग्यान की आँखिन देखौ,
    अखिल विस्व भर पूरि रूप सब उनहिं बिसेखौ।
लोहा दारु पखान में जल थल महि आकास,
    सचर अचर बरतत सबै जोति ब्रह्म परकास।
        सुनो ब्रज नागरी॥

(४)

कौन ब्रह्म की जोति ग्यान कासों कहो ऊधो,
हमरे सुन्दर स्याम प्रेम को मारग सूधो।
नैन बैन स्रुति नासिका मोहन रूप लखाय,
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगोरी लाय।
सखा सुन स्याम के॥

(५)

जो मुख नाहिन हतो कहो किन माखन खायो,
पायन बिन गोसंग कहो बन बन को धायो।
आँखिन में अञ्जन दयो गोवर्द्धन लयो हाथ,
नन्द जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह ब्रजनाथ।
सखा सुन स्याम के॥

(६)

जोगी जोतिहि भजैं भक्त निज रूपहि जानैं,
प्रेम पियूषै प्रगट स्याम सुन्दर उर आनैं।
निर्गुन गुन जो पाइये लोग कहैं यह नाहि,
घर आयो नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहि।
सखा सुन स्याम के॥

(७)

नास्तिक जे हैं लोग कहा जानैं हित रूपै,
प्रगट भानु को छांड़ि गहै परछाहीं धूपै।

हमको बिन वा रूप के और न कछू सोहाय,
ज्यों करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय।
सखा सुन स्याम के॥

(८)

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि कौं जो ऐसे,
और जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे या लघु ग्यान को उर मद रह्यो उपाध,
अब जान्यौ ब्रज प्रेम को लहत न आधौ आध।
बृथा स्रम करि मरयौ॥

(९)

पुनि कह सब ते साधु संग उत्तम है भाई,
पारस परसे लोह तुरत कंचन ह्वै जाई।
गोपी प्रेम प्रसाद कौ हौ अब सीख्यौ आय,
ऊधव तैं मधुकर भये दुविधा ग्यान मिटाय।
पाय रस प्रेय को॥

(१०)

ऐसे सोचत जहाँ स्याम तहँ आयो धायो,
परिकरिया दंडौत बहुत आवेश जनायो।
कछु निर्दयता स्याम की करि क्रोधित दोउ नैन,
कछु ब्रज बनिता प्रेम की बोलत रस भरि बैन।
सुनो नंद लाडिले॥

(११)

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूंठी,
जब ही लौं नहि लखौ तबहि लौं बाँधी मूठी।
मैं जान्यौ ब्रज जायकै तुम्हरो निर्दय रूप,
जो तुमको अवलंबही तिनको मेलौ कूप।
कौन यह धर्म है॥

(१२)

ह्वै सचेत कहि भलो सखा पठयो सुधि ल्यावन,
अवगुन हमरे आनि तहाँ ते लगे बतावन।
मो मैं उनमैं अन्तरो एको छिन भरि नाहिं,
ज्यों देखौ मो माहिं वै त्यों मैं उनहीं माँहि।
तरङ्गनि बारि ज्यों॥

(१३)

सुनत सखा के बैन नैन भरि आए दोऊ,
बिबस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ।
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै रहि साँवर गात,
कल्प तरोरुह साँवरो ब्रज बनिता भइ पात।
उलहि अँग अङ्ग ते॥

(१४)

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी,
ऊधो भ्रमहिं निवारि डारि मुख मोह की जारी।
अपनो रूप दिखाय कै लीन्हो बहुरि दुराय,
नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय।
प्रेम रस पुंजनी॥

-:o:-

रास-पंचाध्यायी से

दोहा

कुंज-कुंज ढूंढ़त फिरी, खोजत दीन दयाल।
प्राननाथ पाये नहीं, बिकल भई ब्रज-बाल॥

रोला

बिरहाकुल ह्वै गईं सबै पूंछत बेलीबन।
को जड़ को चैतन्य, न कछु जानत बिरहीजन॥

हे मालति, हे जाति, जूथ के, सुनि हित दै चित।
मान-हरन मन-हरन लाल गिरिधरन लखे इत॥

हे केतकि, इततें कितहूँ चितये पिय रूसे।
कै नंद नन्दन मन्द मुसुकि तुम्हरे मन मूसे?

ह मुक्ताफल, बेलि-धरे मुक्ताफल माला।
देखे नैन बिसाल मोहना नन्द के लाला॥

हे मन्दार, उदार बीर करबीर महामति।
देखे कहुँ बलबीर धीर मन हरन धीर गति?

हे चन्दन, दुख-दन्दन सब की जरनि जुड़ावहु।
नँद नन्दन-जग बन्दन चन्दन हमहिं बतावहु॥

पूछौ री, इन लतनि फूलि रहि फूलनि—जोई,
सुन्दर पिय के परस बिना अस फूल न होई॥

हे सखि, हे मृग-वधू इन्हें किन पूछहु अनुसारि ।
डहडहे इनके नैन, अबहिं कहुँ देखे हैं हरि ॥

अहो सुभग वन गंध, पवन सँग थिर जु रही चलि ।
सुख के भवन दुख दमन रमन इततें चितये बलि ?

हे चम्पक, हे कुसुम, तुम्हें छवि सब ते न्यारी ।
नैकु बताय जु देउ, जहाँ हरि कुंज-बिहारी ॥

हे कदंब, हे निंब, अंब, क्यों रहे मौन गहि ?
हे बट, उतग सुरंग वीर कहुँ तुम इत उत लहि ?

हे असोक, हरि सोक, लोकमनि पियहि बतावहु ।
अहो पनस, सुभ सरस मरत तिय अमिय पियावहु ॥

जमुन निकट के बिटप पूंछि भई निपट उदासी ।
क्यों कहिहैं सखि अति कठोर ये तीरथ-बासी ॥

हे जमुना, सब जानि-बूझि तुम हठहि गहति हौ ।
जो जल जग उधार ताहि तुम प्रगट बहति हौ ॥

हे अवनी, नवनीत—चोर चित-चोर हमारे ।
राखे कितहुँ दुराय बता देउ प्रान पियारे ॥

हे तुलसी कल्यान सदा गोविन्द-पद-प्यारी ।
क्यो न कहौ दुम नन्दसुवन सों बिथा हमारी ॥

जहँ आवत तम कुंज-पुंज गहवर तरु-छाईं ।
अपने मुख चाँदने चलत सुन्दर बन माईं ॥

इहि विधि बन धन ढूँढ़ि बूझि उनमत की नाईं ।
करन लगी मन हरन लाल-लीला मन भाईं ॥

—:०:—

नरोत्तमदास

सुदामा चरित

(१)

लोचन कमल दुख-मोचन तिलक भाल,
स्रवनन कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पत बसन गरे में बैजयन्ती माल,
सङ्ख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं॥
कहत नरोत्तम संदीपन गुरू के पास,
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारिका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय,
द्वारिका के नाथ वै अनाथन के नाथ हैं॥

(२)

कोदों सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौता।
सीत बितीतत जौ सिसियात तौ हौं हठती पै तुम्हें न हठौतो॥
जौ जनती न हितू हरि-सों तौ मैं काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घरतें कबहूँ न गयो पिय! टूटो तवा अरु फूटी कठौती॥

(३)

तैं तौ कही नीकी सुनि बात हित ही की यही,
रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइए

मित्र के मिले तें चित्त चाहिए परसपर,
मित्र के जो जेइए तो आपहूँ जेंवाइए ॥
वै हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यहि रूप जाइ कहा सकुचाइए ।
सुख दुख करि दिन काटे ही बनैंगे, भूलि—
बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए ॥

(४)

सीस पगा न झँगा तन में प्रभु ! जाने को आहि, बसै केहि ग्रामा ।
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा ॥
द्वारे खड़ो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा ।
पूछत दीन दयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ॥

(५)

ऐसे बेहाल बिवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोये ।
'हाय महा दुख पायो सखा ! तुम आये इतै न किते दिन खोये ॥'
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोये ।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सों पग धोये ॥

(६)

कै वह टूटी-सी छानी हुती, कहँ कंचन के सब धाम सुहावत ।
कै पग में पनहीं न हुती, कहँ लै गजराजहु ठाढ़े महावत ॥
भूमि कठोर पै रात कटै, कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत ।
कै जुरतो नहिं कोदों सवाँ, प्रभु के परताप तें दाख न भावत ॥

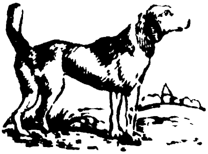

रहीम

दोहे

अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम॥

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि॥

अरज गरज मानैं नहीं, रहिमन ए जन चारि।
रिनिया, राजा, माँगता, काम आतुरी नारि॥

उरग, तुरङ्ग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हे संभारिये, पलटत लगै न बार॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलै फलै अघाय॥

ए रहीम दर दर फिरहि, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िये, वे रहीम अब नाहिं॥

ओछो काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहै न कोय॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे, ते ही साँचे मीत॥

कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सो गैर।
रहिमन बसि सागर बिशे, करत मगर सौं बैर॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम ।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम ॥

खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक बनाय ।
रहिमन करुए मुखन को, चहि अत इहै सजाय ॥

खैर, खून, खांसी, खुसी, बैर, प्रीति, मद पान ।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान ॥

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बे परवाह ।
जिनको कछू न चाहिए, वे साहन के साह ॥

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस ।
जापर बिपदा पड़त है, सो आवत यहि देस ॥

छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात ।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥

जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग ।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह ।
धरती पर ही परत है, शीत, घाम औ मेह ॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम ।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥

जो बड़ेन को लघु कहै, नहिं रहीम घटि जाँहि ।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहि ॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय ।
प्यादे सो फरजी भयो, टेढो टेढो जाय ॥

जों रहीम तन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं॥

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटाय।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खाय॥

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार।

थोथे बादर क्वाँर के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करै पाछिली बात॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहि लखै, दीनबंधु सम होय॥

दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहि।
जान परत है काक पिक, ऋतु बसंत के माहिं॥

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पिअत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पिआसो जाय॥

धूर धरत निज सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो ढूँढत गजराज॥

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधै मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूँछत कौन॥

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोभ।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोम॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय॥

रहिमन अती न कीजिए, गहि रहिए निज कानि।
सैंजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि॥

रहिमन अपने पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाये रहे, तो सों को अनखाय॥

रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारी गेह ते, कस न भेद कहि देई॥

रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ॥

रहिमन कुटिल कुठार ज्यों, करि डारत द्वै टूक।
चतुरन के कसकत रहे, समय चूक की हूक॥

रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पति-राखनहार है, माखन चाखनहार॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं बेर॥

रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो न बने, सौ चूहे के चाम॥

रहिमन तब लगि ठहरिये, दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान॥

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तलवारि॥

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझैं सब ताहि॥

रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँके तीन ।।

रहिमन मनहि लगाई के, देखि लेहु किन कोय ।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय ।।

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात ।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात ।।

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चितलाय ।
परसत नम मैला करे, सो मैदा जरि जाय ।।

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहि ।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहि ।।

राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावण साथ ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होत . आपु ने हाथ ।।

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग ।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ।।

समय दसा कल देखि के, सबै करत सनमान ।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ।।

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पिआवै मान बिनु ।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ।।

केशवदास

रामचन्द्रिका से

(१)

विश्वामित्र बसिष्ठ स्यों एक समय रघुनाथ।
आरंभ्यो केशव करन अश्वमेध की गाथ।।

(२)

मैथिली समेत तौ अनेक दान मैं दियो।
राजसूय आदि दै अनेक यज्ञ मैं कियो।।
सीय-त्याग पाप ते हिये सु हौं महा डरौं।
और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं।।

(३)

धर्म कर्म कछु कीजई सफल तरुणि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजई निष्फल सोई नाथ।।

(४)

करिये युत भूषण रूप रयो। मिथिलेश सुता इक स्वर्ण मयी।।
ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये। सुचि सो सब यज्ञ-बिधान किये।।

(५)

हय शालन ते हय छोरि लियो। शशि वर्ण सो केशव शोभरयो।
अति श्यामल एक बिराजतु है। अलि स्यो सरसीरुह लाजतु है।।

(६)

पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत पट्ट बाँधिय भाल।
भूषि भूषण शत्रु दूषन छांड़ियो तेहि काल॥
संग लै चतुरङ्ग सैनहिं शत्रुहंता साथ।
भाँति-भाँतिन मान दै पठये सु श्रीरघुनाथ॥

(७)

जात है जित बाजि केशव जात हैं तित लोग।
बोलि बिप्रन दान दीजत यत्र तत्र सभोग॥
वेणु बीण मृदंग बाजत दुंदुभी बहु भेव।
भाँति भाँतिन होत मङ्गल देव से नर देव॥

(८)

राघव की चतुरंग चमूचय को गनै केशव राज समाजनि।
सूर तुरंगन के उरझै पग तुङ्ग पताकान की पट साजनि॥
टूटि परैं तिनतें मुक्ता धरणी उपमा बरणी कवि राजनि।
विंदु किधौं मुख फेनन के किधौ राज सिरी श्रव मङ्गल लाजनि॥

(९)

राघव की चतुरङ्ग चमूचय धूर उठी जलहू थल छाई।
मानो प्रताप हुतासन धूम को केशवदास अकासन माई॥
मेटि कै पंच प्रभूत किधौं विधि रेणुमयी नव रीति चलाई।
दुःख निवेदन को भुव भार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई॥

(१०)

नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
सोखि सोखि जल भूरि भूरि थल गाथ की।

केशादास आस पास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपत्ति सब आपने ही हाथ की ॥
उन्नत नवाय नत उन्नत बनाय भूप।
शत्रुन की जीविका ऽति मित्रन के साथ की ॥
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिसि दिसि जीति सेना रघुनाथ की ॥

(११)

दिसि विदिसिन अवगाहि कै सुख ही केशव दास।
बालमीकि कै आश्रमहिं गयो तुरंग प्रकाश ॥

(१२)

दूरिहि ते मुनि बालक धाये। पूजित बाजि बिलोकन आये।
भाल को पट्ट जहीं लव बाँच्यो। बाँधि तुरंगम जयरस राच्यो ॥

(१३)

घोर चमू चहुँ ओर से गाजी। कौनेहि रे यह बाँधियों बाजी ॥
बोलि उठे लव मैं यहि बाँध्यो। यो कहि कै धनुसायक साध्यो ॥
मारि भगाय दिये सिगरे यौ। मन्मथ के शर ज्ञान घनेज्यौं ॥

(१४)

योद्धा भगे वीर शत्रुघ्न आये। कोदण्ड लीन्हे महारोष छाये ॥
ठाढ़ो तहाँ एक बाले बिलोक्यो। रोक्यो तहीं जोर नाराच मोक्यो ॥

(१५)

बालक छाँड़ि दे छाँड़ि तुरंगम। तोसों कहा करौं संगर संगम ॥
ऊपर बीर हिये करुणा रस। बीरहिं बिप्र हते न कहूँ जस ॥

(१६)

कछु बात बड़ी न कहौं मुख थोरे। लव सों नेजुरो लवणासुर भोरे ॥
द्विज दोषन ही बलताहिं सहारयो। मरही जु रह्यौ सु कहा तुम मारयो ॥

(१७)

राम बन्धु बाण तीनि छोड़ियो त्रिशूल से।
भाल में विशाल ताहि लागियो ते फूल से ॥
बात कीन्ह राज तात गात तैं कि पूजियो।
कौन शत्रु तू हत्यो जु नाम शत्रुहा लियो ॥

(१८)

रोष करि बाण बहु भाँति लव छँड़्यो। एक ध्वज, सूतयुग, तीन रथ खंडियो ॥
शस्त्र दशरत्थसुत अस्त्र कर जो धरै। ताहि सिय पुत्र तिल तूलसम खंडरै ॥

(१९)

रिपुहा तब बाण वहै कर लीन्हो। लवणासुर को रघुनन्दन दीन्हो ॥
लव के उर में उरझ्यो वह पत्री। मुरझाय गिरयो धरणी महँ छत्री ॥

(२०)

मोहे लव भूमि परे जबहीं। जै दुंदुभि बाजि उठी तबहीं ॥
भू ते रथ ऊपर आनिधरे। शत्रुघ्न सु यों करुणाहि भरे ॥

(२१)

घोड़ा तबही तिन छोरि लयो। शत्रुघ्नहि आनन्द चित्त भयो ॥
लैके लव को ते चले जबहीं। सीतापहँ बाल गये तबहीं ॥

(२२)

सुनु मैथिली नृप एक को लव बाँधियो बर बाजि।
चतुरंग सेन भगाइ कै सब जीतियो वह आजि ॥

उर लागिगो शर एक को भुव मैं गिरो मुरझाय।
तब बाजि लै लव लै चल्यौ नृप दुंदुभीन बजाय॥

(२३)

सीता गीता पुत्र की सुनिकै भई अचेत।
मनो चित्र की पुत्रिका मन क्रम बचन समेत॥

(२४)

रिपुहाथ श्री रघुनाथ को सुत क्यो करै करतार।
पतिदेवता सब काल तौ लव जी उठै यहि बार॥
ऋषि हैं नहीं कुश है नहीं लव लेइ कौन छुड़ाय॥
बन माँझ टेर सुनी जहीं कुश आइयो अकुलाय॥

(२५)

रिपुहि मारि सहारि दल यम ते लेहु छुड़ाय।
लवहि मिलैहौ देखिहौं माता तेरे पाय॥

(२६)

गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि बालि बली बर सो बर फेर्यो।
डाहि दिये सिर रावन के गिरि से गुरु जात न जो तन हेर्यो॥
शाल समूल उखारि लिये लवणासुर पीछे ते आय सो टेर्यो।
राघव को दलमत्त करीश्वर अंकुश दै कुश केशव फेर्यो॥

(२७)

कुश को टेर सुनी जहीं फूलि फिरे शत्रुघ्न।
दीप बिलोकि पतंग ज्यो यदपि भयो बहु बिघ्न॥

(२८)

रघुनन्दन को अवलोकत ही कुश। उर माँझ हयो शर शुद्ध निरकुंश॥
ते गिरे रथ ऊपर लागत ही शर। गिरि ऊपर ज्यों गजराज कलेवर॥

(२६)

जूझि गिरे जबही अरिहारन । भाजि गये तबहीं भट के गन ॥
काढ़ि लियो जबहीं लव को शर । कंठ लग्यो तबहीं उठि सोदर ॥

(३०)

मिले जु कुश लव कुशल सों बाजि बाँधि तरुमूल ।
रण महिं ठाढ़े शोभिजैं पशुपति गणपति तूल ॥

रसिक प्रिया से

(१)

चपला यह मोर किरीट लसै मघवा धनु सोभ बढ़ावत हैं ।
मृदु गावत आवत बेनु बजावत मित्र मयूर नचावत हैं ॥
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत हैं ।
घनस्याम घने घन-बेस धरे जु बने बनते ब्रज आवत हैं ॥

(२)

सखि सोहत गोप-सभा महँ गोबिंद बैठे हुते दुति को धरि कै ।
जनु 'केसव' पूरन चंद्र लसै चित चारु चकोरन को हरि कै ॥
तिनको उलटो करि आन दियो केहु नीरज नीर नयो भरि कै ।
कहि काहे ते नेकु निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करिकै ॥

(३)

हरित हरित हार हेरत हियो हरत
हारी हौं हरनि नैनी हरि न कहूँ लहौं ।
बनमाली ब्रज पर बरषत बनमाली
बनमाली दूर दुख केसव कैसे सहौं ?
हृदय कमल नैन देखिकै कमल नैन
होहुँगी कमलनैनि और हौं कहा कहौं !

आप घने घनस्याम घन हीं से होत घन—
स्याम के दिवस घनस्याम बिन क्यों रहां !

(४)

दीरघ दरीन बसै केसवदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखे बन करी ज्यों कँपत है।
बासर की संपदा चकोर ज्यों चितवत,
चकवा ज्यों चंद्र ही ते चौगुनो चंपत है॥
केका सुनि ब्याल ज्यों बिलात जात घनस्याम,
घननि की घोर निज पासे त्यों तपत है।
भौंर ज्यों भँवत बन जोगी ज्यों जगत, निसि
चातक ज्यों स्याम नाम तेरोई जपत है॥

कविप्रिया से

जो हौं कहौं रहिये, तो प्रभुता प्रकट होत,
चलन कहौं, तो हित हानि नाहि सहनो।
भावै सो करहु, तो उदास भाव प्राननाथ,
साथ लै चलहु, कैसे लोक लाज बहनो ?
केसोराय की सौ तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जो पै नाहीं आज रहनो।
तैसियै सिखाओ सीख तुमहीं सुजान पिय,
तुमरे चलत मोहिं जैसो कछू कहनो॥

रसखान

(१)

मानुष हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं, मिलि कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन॥

(२)

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख, नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिन सों, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हू कलधौत के धाम, करील की कुञ्जन ऊपर वारौं॥

(३)

धूर भरे अति सोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग, पैजनी बाजती, पीरी कछोटी॥
वा छवि को 'रसखानि' बिलोकत, वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग कहा कहिये हरि, हाथ सों लै गयो माखन रोटी॥

(४)

सेस महेस गनेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥

नारद से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

(५)

उनही के सनेहन सानी रहैं, उनहीं के जु नेह दिवानी रहैं।
उनही की सुनै न औ बैन, त्यों सैन सों चैन अनेकन ठानी रहैं॥
उनहीं संग डोलन में 'रसखानि', सबै सुख सिंधु अघानी रहैं।
उनहीं बिन ज्यों जलहीन ह्वै, मीन सी आँखि मेरी अँसुवानी रहैं॥

(६)

सोहत है चँदवा सिर मोर के, जैसियै सुंदर पाग कसी है।
तैसियै गोरज भाल विराजति, जैसी हिये बनमाल लसी है॥
रसखानि बिलोकति बौरी भई, दृग मूंदि कै ग्वारि पुकारि हँसी है।
खोलि री घूँघट, खोलौं कहा, वह मूरति नैननि माँझ बसी है॥

(७)

ब्रह्म मैं ढूंढ्यो पुरानन गानन, बेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यौ कबहूँ न कितू, वह कैसे सुरूप औ कैसे सुभायन॥
हेरत-हेरत हारि पर्‍यौ रसखानि, बतायौ न लोग लुगायन।
देखो, दुर्‍यौ वह कुंज-कुटीर में, बैठ्यौ पलोटतु राधिका-पायन॥

(८)

यह देखि धतूरे के पात चबात, औ गात सों धूरि लगावतु है।
चहुँ ओर जटा अटकैं लटकैं, सुभ सीस फनी फहरावतु हैं॥
रसखानि जोई चितवैं चित दै, तिनके दुख-दुन्द भगावतु हैं।
गजखाल, कपाल की माल बिसाल, सो गाल बजावतु आवतु है॥

प्रेम-वाटिका से

या छवि पै रसखानि अब, वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कबितु नहिं, पाइ रहे सु खोज ॥१॥

'प्रेम' 'प्रेम' सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय ॥२॥

प्रेम अगम, अनुपम, अमित, सागर - सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि, जात नहीं रसखान ॥३॥

प्रेम बारूनी छानिकै, बरुन भये जलधीस।
प्रेमहिं ते विष पान करि, पूजे जात गिरीस ॥४॥

कमल तंतु- सों छीन अरु, कठिन खड्ग की धार।
अति सूधो, टेटो बहुरि, प्रेम पंथ अनिवार ॥५॥

शास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मोलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान ॥६॥

काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य ॥
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥७॥

दम्पति-सुख, अरु विषयरस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इन तें परे बखानिए, शुद्ध प्रेम रसखान ॥८॥

'प्रेम' 'प्रेम' सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस ॥९॥

जातें पनपत, बढ़त अरु, फूलत, फलत महान।
सो सब प्रेमहिं प्रेम यह, कहत रसिक रसखान ॥१०॥

सेनापति

बसन्त

बरन बरन तरु फूले उपवन वन,
सोई चतुरंग संग दल लहियत है।
बंदी जिमि बोलत बिरद बीर कोकिल है,
गुंजत मधुप गान गुन गहियत है।
आव आस पास पुहुपन की सुबास,
सोई सोंधे के सुगंध माँझ सने रहियत है।
सोभा कौ समाज, 'सेनापति' सुख-साज आज,
आवत बसंत रितुराज कहियत है ॥१॥

लसत कुटज, घन चंपक, पलास वन,
फूली सब साखा जे हरति जन चित्त हैं।
सेत, पीत, लाल फूल-जाल हैं बिसाल,
तहाँ आछे अलि अच्छर जे कारज के मित्त हैं
'सेनापति' माधव महीना भरि नेम करि;
बैठे द्विज कोकिल करत घोष नित्त हैं।
कागद रंगीन में प्रवीन हैं बसंत लिखे,
मानौं काम चक्कवै के बिक्रम कवित्त हैं ॥२॥

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं विशाल अंग,
स्याम रंग भेंटि मानौं मसि में मिलाए हैं।

तहाँ मधुकाज आइ बैठे मधुकर पुञ्ज,
मलय पवन उपवन वन धाए हैं।
'सेनापति' माधव महीना मैं पलास तरु,
देखि देखि भाउ कविता के मन भाए हैं।
आधे अन सुलगि, सुलगि रहे आधे मानौं,
विरही दहन काम क्वैला परचाए हैं ॥३॥

ग्रीष्म

जेट नजिकाने सुधरत खसखाने-तल,
ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं।
होति है मरम्मति विविध जल जंत्रन की,
ऊंचे ऊंचे अटा ते सुधा सुधारियत हैं॥
'सेनापति' अतर गुलाब-अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं।
ग्रीषम के बासर बराइबे कौ सीरे सब,
राज भोग काज साजि यौं सम्हारियत हैं॥४॥

वृष कौ तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत हैं।
तचति धरनि जग जरत झरनि सीरी,
छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत हैं॥
'सेनापति' नैंकु दुपहरी के ढरत, होत,
धमका विषम, ज्यों न पात खरकत हैं।

मेरे जान पौनों सीरी ठौर को पकरि कोनों,
घरी एक बैठि कहूँ घामैं बितवत हैं ॥५॥
'सेनापति' ऊँचे दिनकर के चलति लुवैं,
नद नदी कुवैं कोपि डारत सुखाइ कैं।
चलत पवन, मुरझात उपवन बन,
लाग्यो है तवन, डार्यौ, भूतलौ तचाइकैं ॥
भीषम तपत रिपु ग्रीषम सकुचि तातैं,
सीरक छिपी है तहखानन में जाइ कैं।
मानों सीतकाल, सीतलता के जमाइबे कौ,
राखे हैं बिरंचि बीच धरा मैं धराइ कैं ॥६॥

वर्षा

दामिनी दमक सोई मंद बिहँसनि, बग
माल है बिसाल सोई मोहिनि कौ हारौ है।
बरन बरन घन रंगित बसन तन,
गरज गरूर सोई बाजत नगारौ है।
'सेनापति' सावन कौ बरसा नवल बधू
मानौं है बरति साजि सकल सिंगारौ है।
त्रिबिध बरन पर्यौ इन्द्र कौ धनुष, लाल,
पन्ना सौं जटित मानौं हेमं खगवारौ है ॥७॥
'सेनापति' उनए नए जलद सावन के,
चारि हू दिसान घुमरत भरे तोइ कैं।

सोभा सरसाने, न बखाने जात नेहू भाँति,
आने है पहार मानों काजर के ढोइ कैं ॥
घन सौ गगन छप्यौ, तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानौं रवि गये खोइ कैं।
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि,
मेरे जानि याही तैं रहत हरि सोइ कैं ॥८॥

शरद्

पाउ निकास तातैं पायौ अवकास, भयो,
जोन्ह कौ प्रकास सोभा ससि रमनीय कों।
बिमल अकास होत बारिज बिकास,
'सेनापति' फूले कास हित हंसन के हीय कों॥
छिति न गरद मानो रंगे हैं हरद सालि,
सोहत जरद को मिलावै हरि पीय कों।
मत्त है दुरद मिट्यो खंजन परद, हितु,
आई है सरद दुखदाई सब जीय कों ॥९॥

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति,
'सेनापति' है सुहाति सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानों मोती अनगन हैं॥
उदित बिमल चंद, चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसो जस अध उरध गगन है।

तिमिर हरन भयौ, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर सागर मगन हैं ॥१०॥

बरन्यौ कबिन कलाधर कौं कलक, तैसो,
को सकै बरनि, कबि हू की मति छीनी है।
'सेनापति' बरनी अपूरब जुगति ताहि,
कोबिद बिचारो कौन भाँति बुद्धि दीनी है॥
मेरे जान जेतिक सों सोभा होत जानी राखि,
तेतिकै कलान रजनी की छबि कीनी है।
बढ़ती के राखे, रैनि हू तैं दिन हैं है यातैं,
आगरी मयंक तैं कला निकासि लीनी है॥११॥

सरसी निरमल नीर पुनि, चंद चाँदिनी पीन।
घन बरसै आकास अरु, अवनी रज है लीन॥
अब नीरज है लीन, बिमल तारागन सोभा।
राज हंस पुनि लीन, सकल हिमकर जी लोभा॥
इत सरवर उत गगन दुहूँ समता है परसी॥
सेनापति रितु सरद, अंग अगनि छबि सरसी॥१२॥

हेमंत और शिशिर

सीत कौ प्रबल 'सेनापति' कोप चढ़्यो दल,
निबल अनल गयो सूर सियराइ कै।
हिम के समीर, तेई बरसैं बिषम तीर,
रही है गरम भौन कोनन मैं जाइ कै॥

धूम नैन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिक सौं लगाइ रहैं नेंकु सुलगाइ कै।
मानौं भीत जानि, महासीत तें पसारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यौ पाउक छिपाइ कै ॥१३॥
सिसिर मैं ससि कौ सरूप पावै सविताऊ,
घाम हू मैं चाँदनी की दुति दमकति है।
'सेनापति' होत, सीतलता है सहस गुनी,
रजनी की झाँई बासर में झमकति है॥
चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।
चंद के भरम होत मोद है कमोदिनी कौं,
ससि संक पंकजनि फूलि न सकति है॥१४॥
सिसिर तुषार के बुखार से उखारत हैं,
पूस बीते होत सून हाथ पाइ ठिरि कै।
द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
'सेनापति' पाई कछु सोचि कै सुमिरि कै॥
सीत तै सहस कर, सहस चरन ह्वै कै,
ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै।
जौ लौं कोक कोकी कौं मिलत तौं लौं होति राति,
कोक अधबीच ही तैं आवत है फिरि कै॥१५॥
धायौ हिमदल, हिम भूधर तैं 'सेनापति'
अंग अंग जग, थिर जंगम ठिरत है।

पैयें न बताई भाजि गई है तताई,
सीत आयौ आततांई छिति अम्बर घिरत हैं ॥
करत है ज्यारी भेषधरि कै उज्यारी ही कौ,
घाम बार बार बैरी बैर सुमिरत हैं ।
उतर तै भाजि सूर मास कौं सरूप करि,
दच्छिन को छोर छिन अथक फिरत हैं ॥१६॥
आयो जोर जड़ कालौ परत प्रबल पालौ,
लोगन कौं लालौ परयो जियै कित जाइकै ।
टारयौ चाहैं वारि कर, तिन न सकत टारि,
मानौ हैं पराए, ऐसे भये ठिठराइ कै ।
चित्र कैसो लिख्यो तेज हीन दिनकर भयौ,
अति सियराइ गयो घाम पतराइ कै ।
'सेनापति' मेरे जान सीत के सताए सूर,
राखे हैं सकोरि कर अंबर छपाइकै ॥१७॥

बिहारी

दोहा

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित-दुति होइ॥ १॥

अजौं तरयौ ना हीं रह्यौ श्रुति सेवत इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतन कैं संग॥ २॥

जम-करि-मुँह-तरहर परयौ, इहि धरहरि चितलाउ।
विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ॥ ३॥

तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उरबसी ह्वै उरबसी-समान॥ ४॥

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबी, मुरारि।
बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि॥ ५॥

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यौं आँखिनु सब देखियै, आँखि न देखी जाँहि॥ ६॥

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईंहिं न भूलि।
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि॥ ७॥

तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग॥ ८॥

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥ ९ ॥

कैसे छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ़्यौ दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे कैं चाम ॥ १० ॥

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु।
मन-काँचै नाचै बृथा, साँचै राँचै रामु ॥ ११ ॥

घरु घरु डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥ १२ ॥

कनक कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिं खाएँ बौराई, इहिं पाएँ हीं बौराइ ॥ १३ ॥

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होतु प्रयागु ॥ १४ ॥

संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध ॥ १५ ॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब, अलि, रही गुलाब में अपत, कँटीली डार ॥ १६ ॥

सीस-मुकुट, कटि- काछनी, कर मुरली, उर-माल।
इहि बानक मो मन सदा बसौ, बिहारी लाल ॥ १७ ॥

नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ।
जैतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥ १८ ॥

बढ़त बढ़त संपति-सलिल मन-सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत घटत सु न फिर घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ १९ ॥

कोरि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीचु।
नल-बल जलु ऊँचे चढ़ै, अंत नीच कौ नीचु ॥२०॥
तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट।
बिकट जटे जौ लगु निपट खुटैं न कपट-कपाट ॥२१॥
भजन कह्यौ, तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ, गँवार ॥२२॥
रनित भृंग घंटावली, झरित दान मधु-नीरु।
मंद-मंद आवतु चल्यौ कुंजरु कुंज-समीरु ॥२३॥
पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाउ।
तरि संसार पयोधि कौं हरि नावैं करि नाउ ॥२४॥
यह बरिया नहिं और की, तूँ करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाइ जिहिं कीने पार पयोधि ॥२५॥
अति अगाधु, अति औथरौ नदी, कूपु, सरु, बाइ।
सो ताकौ सागरु, जहाँ जाकी प्यास बुझाइ ॥२६॥
मोर-मुकट की चंद्रिकनु यौं राजत नँद नंद।
मनु ससिसेखर की अकस किय सेखर सत चंद ॥२७॥
अधर धरत हरि कैं परत, ओठ-डीठि-पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष-रंग होति ॥२८॥
करौ कुबत जगु, कुटिलता तजौं न, दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी लाल ॥२९॥
को कहि सकै बड़ेनु सौं लखैं बड़ीयौ भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल ॥३०॥

समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ॥३१॥

इही आस अटक्यो रहतु, अलि गुलाब के मूल।
ह्वै हैं फेरि बसन्त ऋतु इन डारन वे फूल ॥३२॥

इक भीजें, चहलें परें, बूड़ें, बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै, वै नै चढ़ती बार ॥३३॥

मीत, न नीति गलीतु ह्वै, जो धरियै धनु जोरि।
खाएँ खरचैं जो जुरैं, तौ जोरियै करोरि ॥३४॥

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ, दीरघ-दाघ निदाघ ॥३५॥

कर लै, सूँघि, सराहि हूँ, रहे सबै गहि मौनु।
गंधी गंध, गुलाब कौ, गवई गाहकु कौनु ॥३६॥

पटु पाँखै, भखु काँकरें, सपर परेई संग।
सुखी परेवा, पुहुमि मैं, एकै तुँहीं, बिहंग ॥३७॥

मनमोहन सौं मोह करि, तूँ घनस्यामु निहारि।
कुंजबिहारी सौं बिहरि, गिरधारी उर धारि ॥३८॥

समै-पलट पलटत प्रकृति, को न तजै निज चाल।
भौ अकरुन करुना करौ, इहिं कपूत कलिकाल ॥३९॥

को छूट्यौ इहिं जाल परि, कत, कुरंग, अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥४०॥

कीनैं हूँ कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौनु।
भौ मन मोहन रूप मिलि, पानी मैं कौ लौनु ॥४१॥

(८)

लग्यो सुमनु ह्वै है सफलु, आतपु-रोसु निवारि ।
बारी, बारी आपनी, सींचि सुहृदता-बारि ॥४२॥

कुच-गिरि चढ़ि, अति थकित ह्वै, चली डीठि मुँह-चाड़ ।
फिरि न टरी, परियै रही, गिरी चिबुक की गाड़ ॥४३॥

लौनैं मुहुँ डीठि न लगै, यौं कहि दीनौ ईठि ।
दूनी ह्वै लागन लगी, दियैं दिठौना, दीठि ॥४४॥

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात ।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु हीं सब बात ॥४५॥

पाइ महावरु दैन कौं, नाइनि बैठी आइ ।
फिरि फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ ॥४६॥

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहि बिकासु इहिं काल ।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगैं कौन हवाल ॥४७॥

कहा भयौ, जौ बीछुरे, मो मनु तो मन साथ ।
उड़ी जाउ कितहूँ तऊ, गुड़ी उड़ाइक-हाथ ॥४८॥

जब जब वै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि ।
आँखिनु आँखि लगी रहैं, आँखैं लागति नाँहि ॥४९॥

अंग-अंग नग जगमगत, दीप सिखा सी देह ।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै, बड़ौ उज्यारौ गेह ॥५०॥

पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर कैं चहुँ पास ।
नित प्रति पून्यौईं रहै, आनन-ओप-उजास ॥५१॥

कहति न देवर की कुबत, कुल तिय कलह डराति ।
पंजर-गत मंजार-ढिग, सुक ज्यौं सूकति जाति ॥५२॥

बन-तन कौं, निकसत, लसत, हँसत हँसत, इत आइ।
दृग-खंजन गहि लै चल्यौ, चितवनि-चैंपु लगाइ ॥५३॥
जसु अपजसु देखत नहीं, देखत साँवल-गात।
कहा करौं, लालच-भरे, चपल नैन चलि जात ॥५४॥
छुवै छिगुनी पहुँचौ गिलत, अति दीनता दिखाइ।
बलि बावन कौ ब्यौंतु सुनि, को बलि, तुम्हैं पत्याइ ॥५५॥
मिलि चंदन बेंदी रही, गोरैं मुँह न लखाइ।
ज्यौं ज्यौं मद लाली चढ़ै, त्यौं त्यौं उघरति जाइ ॥५६॥
डीठि बरत बाँधी अटनु, चढ़ि धावत न डरात।
इतहिं उतहि चित दुहुनु के, नट लौं आवत जात ॥५७॥
सोवत, जागत, सुपन-बस, रस, रिस, चैन, कुचैन।
सुरति स्याम घन की सुरति, बिसरैं हूँ बिसरै न ॥५८॥
सघन कुञ्ज, घन घनतिमिरु, अधिक अँधेरी राति।
तऊ न दुरिहै, स्याम, वह, दीपसिखा सी जाति ॥५९॥
इत आवति चलि, जाति उत, चली छसातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरैं सैं रहै, लगी उसासनु साथ ॥६०॥
डीठि न परतु समान-दुति, कनकु कनक सैं गात।
भूषन कर करकस लगत, परसि पिछाने जात ॥६१॥
तच्यौ आँच अब बिरह की, रह्यौ प्रेम-रस भींजि।
नैननु कैं मग जलु बहै, हियौ पसीजि पसीजि ॥६२॥
मानहु बिधि तन-अच्छ छबि, स्वच्छ, राखिबे काज।
दृग-पग-पोंछन कौ करे, भूषन पायंदाज ॥६३॥

टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख-जोति ।
लसति रसोई कैं बगर, जगर मगर दुति होति ॥६४॥

कहा कुसुमु, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति ।
जाकी उजराई लखैं, आँखि ऊजरी होति ॥६५॥

छिप्यो छबीलो मुँहु लसै, नीलैं अंचर-चीर ।
मनौ कलानिधि झलमलै, कालिंदी कैं नीर ॥६६॥

ध्यान आनि ढिग प्रानपति, रहति मुदित दिन राति ।
पलकु कँपति, पुलकित पलकु, पलकु पसीजति जाति ॥६७॥

लाज-लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं ।
ए मुँह जोर तुरङ्ग ज्यौं, ऐंचत हूँ चलि जाहिं ॥६८॥

कर लै, चूमि-चढ़ाइ सिर, उर लगाइ, भुज भेटि ।
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति, धरति समेटि ॥६९॥

इन दुखिया अँखियानु कौं, सुखु सिरज्योई नाहिं ।
देखैं बनैं न देखतैं, अनदेखैं अकुलाहिं ॥७०॥

बेसरि-मोती, धनि तुहीं, को बूझै कुल जाति ।
पीबौ करि तिय ओठ कौ, रसु निधरक दिन राति ॥७१॥

भूषण

(१)

विकट अपार भव पंथ के चले को स्रम,
हरन करन बिजना से ब्रह्म ध्याइये।
यहि लोक पर लोक सुफल करन कोक—
नद से चरन, हिये आनि के जुड़ाइये॥
अलि-कुल-कलित-कपोल-ध्यान-ललित—
अनन्द-रूप-सरित में भूषण अन्हाइये।
पाप-तरु भञ्जन, बिघन-गढ़ गञ्जन,
जगत मन रञ्जन, द्विरद मुख गाइये॥

(२)

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर, रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम दण्ड पर चीता मृग झुण्ड पर,
भूषन, वितुण्ड पर, जैसे मृगराज है॥
तेज तम अंस, पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥

(३)

साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है॥
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठैल पैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत, जिमि
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥

(४)

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहन वारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कन्द मूल भोग करें, कन्द मूल भोग करें,
तीन बेर खाती, ते वै तीन बेर खाती हैं॥
भूषन शिथिल अंग, भूखन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं, ते वै बिजन डुलाती हैं।
भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं॥

(५)

अतर गुलाब रस चोवा घनसार सब,
सहज सुबास की सुरति बिसराती हैं।

जल भर पलँग ते भूमि न धरति पाँव,
भूली खान पान फिरैं बन बिललाती हैं ॥
भूषन भनत, सिवराज तेरी धाक सुनि,
दारा हार बार न सम्भारैं अकुलाती हैं ॥
ऐसी परी नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं ॥

(६)

मारे दल मुगल तिहारी तलवार आज,
उछलि बिछलि म्यान चामी मे निकासती।
तेरी तलवार लागे दूसरी न माँगे कोउ,
काटि के कलेजा श्रोन पीवत बिनासती ॥
साहि के सपूत महाराज सिवराज वीर,
तेरी तलवार स्याह नागिन ते . जासती।
ऊँट हय पैदल सवारन के झुंड काटि,
हाथिन के मुण्ड तरबूज लौं तरासती ॥

(७)

दारा की दौर यह रारि नहीं खजुवे की,
बाँधिबो नहीं है किधौं मीर सहवाल को।
मठ बिस्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को,
देव को न देहरा न मन्दिर गोपाल को ॥
गाढ़े गढ़ लीन्हे और बैरी कतलाम कीन्हे,
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को।

बूड़ती है दिल्ली सो संभारै क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को ॥

(८)

तेरी स्वारी माँझ महाराज सिवराज बली,
केते गढ़पतिन के पंजर मचकि गे।
केते वीर मारि के बिडारे किरवानन ते,
केते गिद्ध खाय, केते अंबिका अचकि गे।
भूषन भनत रुण्ड मुण्डन की माल करि,
चार पाँव नाँदिया के भार ते मचकि गे।
टूटिगो पहार बिकराल भुव मण्डल के,
सेस के सहस फन, कच्छप कचगि गे॥

(९)

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को॥
भूषन अखंड नव खंड महि मण्डल में,
तम पर दावा रवि-किरन-समाज को,
पूरब पछांह देश दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को॥

(१०)

वेद राखे विदित पुरान राखे सार युत,
राम नाम राख्यो आनि रसना सुघर में।

हिन्दुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँध में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में ॥
मीड़ि राखे मुगल मरोरि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में ।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में ॥

(११)

भुज भुजगेस की बै संगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के ।
बख्तर पाखरिन बीच धँसि जाती मीन,
पैरि पार जाती परवाह ज्यों जलन के ॥
रैया राय चम्पति को छत्र साल महाराज,
भूषन सकत को बखान यो बलन के ।
पच्छी पर—छीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥

(१२)

रैया राय चम्पति को चढ़ो छत्र साल सिंह,
भूषन भनत सम सेर जोम जमकै ।
भूषन भनत भादों की घटा सी उठीं गरदैं गगन,
घेरै सेलैं समसेर फेरै दामिनी सी दमकैं ॥
खान उमरावन के आन राजा रावन के,
सुनि सुनि उर लागै घन कैसी धमकैं ॥

बैहर बगारन की अरि के अगारन की,
नाँघती पगारन नगारन की धमकैं ॥

(१३)

हैवर हरट्ट साजि गैवर गरट्ट सम,
पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की ।
भूषन भनत राय चम्पति के छत्रसाल,
रोप्यो रन ख्याल ह्वै के ढाल हिन्दुवाने की ॥
कैयक हजार एक बार बैरी मारि डारे,
रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की ।
सैद अफगन सेन सगर सुतन लागी,
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की ॥

(१४)

राजत अखण्ड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को ।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को ॥
साज सजि गज तुरी पैदरि कतार दीन्हे,
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को ।
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं के सराहौं छत्रसाल को ॥

मतिराम

(१)

जाके लगे गृह-काज तज्यो, न सह्यो सखियान की सीख सिखाई।
बैर कियो सिगरे ब्रज गाउँ में, जाके लिये कुल-कानि गँवाई॥
जाके लये घर-बाहर हू, 'मतिराम' रहै हँसि लोग चवाई।
ता हरि सों छिन एकहि बार, गँवारि मैं तोरत बार न लाई॥

(२)

मानहु पायो है राज कछू, चढ़ि बैठत ऐसे पलास की खोढ़े।
गुञ्ज-गरे सिर मोर पखा, 'मतिराम' जू गाय चरावत छोंढ़े॥
मोतिन को मम तोरयो हरा, गहि हाथन सों रही चूनर पोढ़े।
ऐसे ही डोलत छैल भये, तुम्हैं लाज न आवति कामरि ओढ़े॥

(३)

साँझ ही सिंगार साजि प्रानप्यारे पास जाति,
बनिता बनक बनी बेलि सी अनन्द की॥
कवि 'मतिराम' कल किंकिनि की धुनि बाजै,
मद मंद चाल ज्यों बिराजत गयन्द की॥
केसरि रंगे दुकूल, हांसी में झरत फूल,
केसन मैं छाई छवि फूलन के वृन्द की॥
पाछे पाछे आवत अँध्यारी-सी भँवर भीर,
आगे फैल रही उजियारी मुख चन्द की॥

(४)

सकल सहेलिन के पीछे-पीछे डोलत है,
मंद मंद गौन आजु हिय को हरतु है ॥
सनमुख होत सुख होत 'मतिराम' जबै,
पौन लागे घूंघट को पट उघरतु है ॥
जमुना के तट, बंसीबट के निकट,
नंदलाल को सकोचनि तैं चाह्यो न परतु है ॥
तन तौं तिया को वर-भाँवरे भरत,
मन साँवरे बदन पर भाँवरे भरतु है ॥

(५)

सोने कैसे बेली अति सुन्दर नवेली बाल,
ठाढ़ी ही अकेली अलबेली द्वार महियाँ ॥
'मतिराम' आँखियाँ सुधा की बरषा सी भई,
गई जब दीठि वाके मुखचन्द्र पहियाँ ॥
नेकु नेरे जाइ करि बातनि लगाइ करि
कछू मन पाइ हरि वाकी गही बहियाँ ॥
सैननि बरचि लई गौननि थकित भई,
नैननि में चाह करै बैननि में नहियाँ ॥

दोहे

राधा मोहन-लाल को, जाहि न भावत नेह ।
परियौ मुठी हजार दस, ताकी आँखिनि खेह ॥ १ ॥

कहा भयौ मतिराम हिय, जौ पहिरी नंदलाल।
लाल मोल पावै नहीं, लाल गुंज की माल ॥ २ ॥
अद्भुत या धन को तिमिर, मो पै कह्यो न जाइ।
ज्यौं ज्यौं मनिगन जगमगत, त्यौं त्यौं अति अधिकाइ ॥३॥
कोटि कोटि मतिराम कहि, जतन करौ सब कोइ।
फाटे मन अरु दूध मैं, नेह न कबहूं होइ ॥ ४ ॥
अब तेरौ बसिबो यहाँ, नाहिंन उचित मराल।
सकल सूखि पानिप गयौ, भयौ पंकमय ताल ॥ ५ ॥
दुख दीने हुँ सुजन जन, छोड़त निज न सुदेस।
अगरु डारियत आगि मैं, करंत सुबासित केस ॥ ६ ॥
पिसुन-बचन सज्जन चितैं, सकै न फोरिन फारि।
कहा करैं लगि तोय मैं, तुपक तीर तरवारि ॥ ७ ॥
तरु ह्वै रह्यौ करार कौ, अब करि कहा करार।
उरधरि नंद-कुमार कौ, चरन-कमल सुकुमार ॥ ८ ॥
ललित मंद कलहंस गति, मधुर मंद मुसक्याति।
चली सारदा बिसद-रुचि, सरद चाँदिनी राति ॥ ९ ॥
तिहि पुरान नव-द्वै पढ़ै, जिहिं जानी यह बात।
जो पुरान सो नव सदा, नव पुरान ह्वै जात ॥ १० ॥
मद-रस मत्त मिलिन्द-गन, गान मुदित गन-नाथ।
सुमिरत कवि मतिराम कैं, सिद्धि-रिद्धि निधि हाथ ॥ ११ ॥
अंग ललित सित-रंग पट, अंगराग अवतंस।
हंस-बाहिनी कीजियै, बाहन मेरौ हंस ॥ १२ ॥

नृपति-नैन-कमलनि बृथा, चितवत बासर जाहिं।
हृदय कमल में हेरि लै, कमल मुखी कमलाहिं ॥ १३ ॥
मो मन मेरी बुद्धि लै, कर हर को अनुकूल।
लै त्रिलोक की साहिबी, दै धतूर को फूल ॥ १४ ॥
स्याम-रूप अभिराम अति, सकल विमल गुन-धाम।
तुम निसिदिन मतिराम को, मति बिसरौ मतिराम ॥ १५ ॥
कल कल कलिका-कुञ्ज ललक, कोकिल-कुलकी केलि।
लोलै कला कलोल कै, लाल लाल कं केलि ॥ १६ ॥
मधुप मोह मोहन तज्यौ, यह स्यामनि की रीति।
करौ आपने काज को, तुम्हैं जाति सो प्रीति ॥ १७ ॥
लखत लाल मुख पाइहौ, बरनि सकै नहिं बैन।
लसत बदन सतपत्र सौ, सहसपत्र से नैन ॥ १८ ॥
करौ कोटि अपराध तुम, वाके हिये न रोष।
नाह-सनेह समुद्र में, बूड़ि जात सब दोष ॥ १९ ॥
मेरो मति मैं राम हैं, कवि मेरे मतिराम।
चित मेरौ आराम में, चित मेरे आराम ॥ २० ॥

घनानन्द

(१)

अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलें तजि आपनपौ,
झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥
'घनआनन्द' प्यारे सुजान सुनौ,
यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो कहौ,
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

(२)

एक डोलै बेचति गुपालहि दहेंड़ी धरें
नैननि समान्यौ सोई बैननि जनातु है।
और उठि बोलैं आगे ल्याइ री कहा है मोल,
कैसो भौ जन्यौ है जग सबा दै ललचातु है॥
आनन्द को घन छायौ रहतु सदाई ब्रज,
चौपनि पपीहा लौं सदाई मँडरातु है।
गोकुल बधूनि की बिकानि पै बिकाइ रह्यौ,
गोरस है गली गली मोहन बिकातु है॥

(३)

सुधा तें स्रवत विष, फूल में जमत सूल,
तम उगिलत चन्द, भई नई रीति है।
जल जारै अंग और राग करै सुरभङ्ग,
सम्पति बिपति पारै, बड़ी बिपरीति है॥
महागुन गहै दोषै, औषधि हू रोग पोषै,
ऐसे जान रस माँहि बिरस अनीति है॥
दिननि को फेर मोहि तुम मन फेरि डारयो,
अहो बिन आनन्द, न जानौं कैसी बीति है॥

(४)

स्याम अंग संगिनी, बिसाल रस-रंगिनी,
अनूपम तरङ्गिनी कृपा सों रहौ भोइ है।
जमुना जननि मोद कारनि महा उदार,
जग ताप-हारिन पुनीत तेरौ तोइ है॥
तीर पर्यो आनि दीन हीन जानि मानि तेरौ,
बिनती करतु हा हा हठि हारि रोइ है।
आनन्द के घन सों पपीहा पन पालै क्यों हू,
बासना मलीन मेरे अन्तर कौ धोइ है॥

(५)

सुरस सुगन्ध भाँति भाँति भाव फूल बिछे,
सम-रस रीति जामें केसरि को झोल ना।
बिसद सुबासना-बसन सों सुधारि सज्यो,
चौंकस गुननि गस्यो गूढ़ साँस खोलनौ॥

राधा ब्रजमोहन बिलास को सुखानन है,
दोऊ एक बानक सलोने मिठ बोलना।
तन कहूँ बसौ तहाँ बस न तनक मेरो,
मन ब्रज मण्डल को उड़न-खटोलना ॥

(६)

मही दूध सम गनै, हन्स बक भेद न जानै।
कोकिल काक समान, काँच मनि एक प्रमानै ॥
चन्दन ढाक समान राँग रूपो सम तौलै।
बिन बिवेक गुन दोष मूढ़ कवि ब्योरानि बोलै ॥
प्रेम-नेम, हित चतुरई, जे न बिचारत नैक मन।
सपनेहू न बिलंबियै, छिन तिन ढिग आनन्द घन ॥

देव

(१)

सूनो कै परम पद ऊनौ कै अनंतमद,
नूनो कै नदीस नद इन्दिरा झुरै परी।
महिमा मुनीसन की, संपति दिगीसन की,
ईसन की सिद्धि ब्रज बीथी बिथुरै परी॥
भादों की अँधेरी आधिराति मथुरा के पथ,
पाय के संयोग 'देव' देवकी दुरै परी।
पारावार पूरन अपार परब्रह्म-रासि,
जसुदा के कोरै एक बारही कुरै परी॥

(२)

डार द्रुम पलना, बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झँगूला सोहैं तन छबि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी कीर बहरावैं देव,
कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै॥
पूरित पराग सों उतारो करै राई लोन,
कंज कली नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसंत, ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै॥

(३)

कथा मैं न कंथा मैं न तीरथ के पंथा मैं न,
पोथी मैं न पाथ मैं न साथ की बसीति मैं।
जटा मैं न मुण्डन न तिलक त्रिपुंडन न,
नदी कूप कुंडन अन्हान दान रीति मैं॥
पीठ मठ मण्डन न कुण्डल न कमंडल न,
माला दण्ड मैं न देव देहरे की भीति मैं।
आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो,
पाइए प्रकट परमेसर प्रतीति मैं॥

(४)

जबते कुंवर कान्ह, रावरी कला निधान,
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी।
तबही तें 'देव' देखी देवता-सी हसति सी,
खीझति-सी, रीझति-सी, रूसति, रिसानी-सी॥
छोही-सी, छली-सी, छोरि लीनी सी, छकी सी छीन,
जकी-सी, टकी-सी, लागी थकी थहरानी सी।
बीधी-सी, बधी-सी, विष बूड़ी-सी, विमोहित-सी,
बैठी वह बकति विलोकति बिकानी-सी॥

(५)

तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि,
हारी पाँय परि परि तऊ तैं न की संभार।
ललंन विलोकि 'देव' पल न लगाये तब,
यों कल न दीनी तै छलन उछलहार॥

ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बंधाय,
आपु बिधि बूड़्यो माँझ बाधा सिंधु निराधार।
एरे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीन्हे अब,
एके बार दैके तोहिं मूंदि मारौं एक बार॥

(६)

प्रेम गुन बाँधि चित्त चंग सो चढ़ायो उन,
सुनि सुनि बंसी धुनि चंग मुहचंग की।
मधुर मृदंग सुर उरझि उतंग भई,
रङ्ग परबीन ऐसी बाजनि अभंग की॥
बधिक बिहङ्ग बधू ब्याधि ज्यों कुरङ्ग नारि,
हनी है कुरंग-नैनी पारधी न अङ्ग की।
सग सग डोलत सखीन के उमंग भरी,
अंग अंग उठत तरंग स्याम-रंग की॥

(७)

अंजन सों रंजित निरंजनहिं जाने कहा,
फीको लगै फूल रस चाखै ही जु बौड़ी को।
तूरज बजाय सूर सूरज को बेधि जाय,
ताहि कहा सबद सुनावत हौ डौढ़ी को॥
ऊधौ, पूरे पारख हौ परखे बनाय 'देव'
पारही पै बोरौ पैरवैया घार औढ़ी को।
मनु मनिका दै हरि हीरा गाँठि बाँध्यो हम,
तिन्हैं तुम बनिज बतावत हौ कौड़ी को॥

(८)

बरुनी बघंबर मैं गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भगोहे भेस रखियाँ।
बूड़ी जल ही मैं दिन-जामिनिहू जागैं, भौहैं,
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ॥
आँसू ज्यों फटिक माल लाल डोरे सेली पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ।
दीजिये दरस 'देव' कीजिये संजोगिनि, 'सु—
जोगिनि ह्वै बैठीं ये बियोगिनि की अंखियाँ।

(९)

ऐसो जो हौं जानतो कि जैहै तू बिषै के संग,
एरे मन मेरे हाथ पाँव तेरे तोरतो।
आजु लौं हौं कत नर-नाहन की नाहीं सुनी,
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो॥
चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुग चितावनीनि माँहि मुंह मोरतो।
भारो प्रेम पाथर बगारो दै गरे सों बाँधि,
राधाबर-बिरद के बारिधि में बोरतो॥

(१०)

जाके न काम न क्रोध विरोध, न लोभ छुवै नहि छोभ को छाँहीं।
मोह न जाहि रहै जग बाहिर, मोल जवाहिर तौ अति चाहीं॥
बानी पुनीति ज्यों देवधुनी, रस आदर सारद के गुन गाहीं।
सील-ससी सबिता- छबिता,कविताहि रचै कवि ताहि सराहीं॥

वृन्द

कैसे निबहै निबलजन, करि सबलन सों गैर।
जैसे बसि सागर विसै, करत मगर सों बैर ॥ १ ॥

विद्याधन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाये न मिलै, ज्यों पंखा को पौन ॥ २ ॥

फेर न ह्वैहै कपट सों, जो कीजै व्यापार।
जैसे हाँड़ी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥ ३ ॥

दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता, कैसे हूँ सुख देत।
धोयेहू सौ बेर के, काजर होय न सेत ॥ ४ ॥

प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिल तें न मिलाय।
दूध दही ते जमत है, काँजी ते फटि जाय ॥ ५ ॥

पर घर कबहूँ न जाइये, गये घटति है जोत।
रवि मण्डल में जात शशि, छीन कला छवि होत ॥ ६ ॥

बिन स्वारथ कैसे सहै, कोऊ करुए बैन।
लात खाय पुचकारिये, होय दुधारू धैन ॥ ७ ॥

जो पहिले कीजै जतन, सो पीछे फलदाय।
आग लगै खोदै कुवाँ, कैसे आग बुझाय ॥ ८ ॥

जैसो थानक सेइये, तैसो पूरे काम।
सिंह गुफा मुक्ता मिलै, स्यार खुरी खर चाम ॥ ६ ॥

मति फिरि जात विपत्ति में, राव रंक इक रीत।
हेम हिरन पाछे गये, राम गवाई सीत ॥ १० ॥
सरस्वति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यौ त्यौं बढ़ै, बिन खरचै घटिजाति ॥ ११॥
चलै जु पंथ पिपीलका, समुद पार ह्वै जाय।
जो न चलै तो गरुड़ हू, पैंडहु चलै न पाय ॥ १२ ॥
चिदानन्द घट में बसै, बूझत कहा निवास।
ज्यों मृगमद मृगनाभि में, ढूंढत फिरत सुवास ॥ १३ ॥
जोति सरूपी ही सबै, सब शरीर में जोति।
दीपक धरिये ताख में, सब घर आभा होति ॥ १४ ॥
कहा बड़े छोटे कहा, जहँ हित तहँ चित लागि।
हरि भोजन किय बिदुरघर, दुरजोधन को त्यागि ॥ १५ ॥
परजन सौ मो मन करैं, परिहरि हरि सों प्रीत।
झूठै सो मानै हरष, अहो जगत विपरीत ॥ १६ ॥
इक विन मागे ही लहै, माँगै एक लहै न।
घन जल मर सरिता भरै, चातक चोंच भरै न ॥ १७ ॥
नीकी पै फीकी लगै, बिनु अवसर की बात।
जैसे वर्णन युद्ध में, रस सिंगार न सोहात ॥१८॥
दीयो अवसर को भलो, जासो सुधरे काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम ॥१९॥
करिये सुख को होत दुख, यह कहु कौन सयान।
वा सोने को जारिये, जासो टूटत कान ॥२०॥

नैना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत ।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत ॥२१॥
मधुर वचन ते जाति मिटि, उत्तम जन अभिमान ।
तनिक सीत जल सों मिटै, जैसे दूध उफान ॥२२॥
जैसे बन्धन प्रेम को, तैसो बन्ध न और ।
काठहि भेदै कमल कौं, छेदि न निकरै भौर ॥२३॥
होय शुद्ध मिटि कलुसता, सत संगति को पाय ।
जैसे पारस को परसि, लोह कनक ह्वै जाय ॥२४॥
जिहिं प्रसंग दूषन लगै, तजिये ताको साथ ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥२५॥
सज्जन तज तन सजनता, कीन्हेहु दोष अपार ।
ज्यौं चन्दन छेदे तऊ, सुरभित करहि कुठार ॥२६॥
जाकौ जहँ स्वारथ सधै, सोई ताहि सुहात ।
चोर न प्यारी चाँदनी, जैसे कारी रात ॥२७॥
कष्ट परेहूँ महत जन, नेकु न होत मलान ।
ज्यौं ज्यौं कंचन ताइये, त्यों त्यों निर्मल बान ॥२८॥
सब तै लघु है माँगिबौ, या में फेर न सार ।
बलि पै याचत ही भयो, बावन तन करतार ॥२९॥
भले बचन मुख नीच के, नाहिन होत प्रकास ।
हींग लसुन में ना मिले, घन कस्तूरी बास ॥३०॥
बिपति बड़े ही सहि सकैं, इतर विपति तें दूर ।
तारे न्यारे रहत हैं, गहे राहु शशि सूर ॥३१॥

सब देखैं पै आपनो, दोष न देखै कोय।
करे उजेरो दीप पै, तरे अँधेरो होय ॥३२॥
संत कष्ट सहि अति सुखी, राखैं राखि समीप।
आप जरैं तउ और को, करैं ऊजेरो दीप ॥३३॥
कोऊ दूर न करि सके, बिधि के उलटे अंक।
उदधि पिता तउ चंद को, धोय न सको कलंक ॥३४॥
होय भले के सुत बुरो, भलो बुरे के होय।
दीपक के काजल प्रगट, कमल कीच ते जोय ॥३५॥
ठौर देखि के हूजिये, कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ो फिरत है, बाँबी सूधो साँप ॥३६॥
बिना कहे हूँ सत पुरुष, पर की पूरें आस।
कौन कहत है सूर्य को, घर घर करत प्रकास ॥३७॥
द्वै ही गति है बड़ेन की, कुसुम मालती भाय।
कै सबके सिर पर रहैं, कै बन माँहि बिलाय ॥३८॥
प्रभु को चिन्ता सबन की, आपुन करिये नाहिं।
जनम अगाऊ भरत है, दूध मात थन माँहि ॥३९॥
काहू को हँसिये नहीं, हँसी कलह की मूल।
हाँसी ही ते है भयो, कुल कौरव निरमूल ॥४०॥

गिरिधर दास

(कुण्डलियाँ)

दौलत पाय न कीजिए, सपने में अभिमान।
चञ्चल जल दिन चारि को, ठाउं न रहत निदान ॥
ठाउं न रहत निदान, जियत जग मे यश लीजै।
मीठे वचन सुनाय, विनय सबही सों कीजै ॥
कह गिरिधर कवि राय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निस दिन चारि, रहत सबही के दौलत ॥ १ ॥

साईं सब संसार में, मतलब का ब्योहार।
जब लग पैसा गाँठ में, तब लग ताको यार ॥
तब लग ताको यार, यार सँग ही सँग डोलैं।
पैसा रहा न पास, यार मुख मे नहिं बोलैं ॥
कहं गिरधर कवि राय, जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोइ साईं ॥ २ ॥

गुन के गाहक सहस नर, बिन गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय ॥
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को इक रङ्ग, काग सब भये अपावन ॥

कह गिरधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुनु लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के॥ ३॥
साईं अवसर के पड़े, को न सहै दुख द्वन्द।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द॥
वै राजा हरिचन्द, करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी वेष, फिरैं अर्जुन बलधारी॥
कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोईं।
को न करै घटि काम, परे अवसर के साईं॥ ४॥
बिना बिचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हँसाय॥
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावै।
खान पान सन्मान, राग रंग मनहिं न भावै॥
कह गिरधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माँहि, कियो जो बिना बिचारे॥ ५॥

पद्माकर

(१)

कलित कपूर में न कीरति कुमोदिनी में,
कुन्द में न कास में, कपास में न कन्द में।
कहै 'पदमाकर' न हंस में, न हासहू में,
हिम में न, हेरी हारि हीरन के वृन्द में।
जेती छवि गंगा की तरंगन में तातितय,
तेती छवि छीर में न छीरधि के छन्द में।
चैत में न चैत चांदनी हू में चमेलिन में,
चन्दन में न, है न चन्दचूड़ में, न चन्द में॥

(२)

मीनागढ़ बम्बई सुमन्ट महाराज बङ्ग
बंदर को बंद करि बंदर बसावैगो।
कहै पदमाकर कसकि कासमीर हू को,
पिञ्जर सों घेरि कैं कलिञ्जर छुड़ावैगो॥
बाँका नृप दौलत अलीजा महराज कबौं,
साजि दल पकरि फिरंगिन दबावैगो।
दिल्ली दहपट्टि, पटना हू को झपट्टि करि,
कबहूक लत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो॥

(३)

टप्पे की टकोर टक्करन की तड़ातड़ित,
माचै जब कूरम-करिदों की लड़ालड़ी।

कहै पदमाकर झपट्ट की झड़ाझड़ में,
मुण्डों की सड़ासड़ भुसुंडों की भड़ाभड़ी ॥
मस्ती की मड़ामड़ जड़ाजड़ जंजीरन की,
पत्रों की पड़ापड़ गरज्जों की गड़ागड़ी ।
धक्कों की धड़ाधड़ अड़ग की अड़ाअड़ में,
है रहे कड़ाकड़ सुदन्तों की कड़ाकड़ी ।

(४)

कूलन में, केलि में, कछारन में, कुञ्जन में,
क्यारिन में कलित-कलीन किलकंत है ।
कहै पदमाकर परागन में, पौन हूँ में,
पानन में पीक में पलासन पंगत है ॥
द्वार में, दिशान में, दुनी में, देश-देशन में,
देखो दीप-दीपन में दीपत दिगन्त है ।
बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में,
बनन में, बागन में बगरयो बसंत है ।

(५)

देखु पद्माकर गुबिंद की अमित छवि
शंकर समेत विधि आनँद सों बाढ़ो है ।
झिझकत, झूमत मुदित, मुसुकात गहि
अंचल को छोर दोऊ हाथन सों, आढ़ो है ॥
पटकत पाँव, होत पैजनी झनुक रंच,
नेक-नेक नैनन में नीर कन काढ़ो है ।

आगे नन्दरानी के तनिक पय पीये काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनकत ठाढ़ो है॥

(६)

कूरम पै कोल, कोल हू पै शेष कुंडली है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।
कहै पद्माकर त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की॥
रजत पहार पर शंभु सुरनायक हैं,
शंभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
शंभु जटा जूटन पै चन्द की छुटी हैं छटा,
चन्द की छटान पै छटा है गंगधार की॥

(७)

जैसे तैं न मोसों कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसे अब तोसो हौं हूँ नेकहू न डरिहौं।
कहै पद्माकर प्रचंड जो परैगो तौ,
उमंडि करि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलो-चलु चलो-चलु बिचलु न बीच ही तें,
कीच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं।
एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछार छार करिहौं॥

(८)

आस करि आयो हुतो मैया पास रावरे मैं,
गाद हू के पास दुख दूरि छुटि-छुटि गे।

कहै पद्माकर कुरोग से संघाती तेऊ,
गैल में चलत घूमि-घूमि घुटि-घुटि गे।
दगादार दोप दीन्ह दारिद बिलाइ गये,
फिकिर के फन्द बिन छोरे छुटि-छुटि गे।
जौ लौं आउं-आउं तेरे तीर पर गंगा तौ लौं,
बीच ही में मेंरे पाप-पुंज लुटि लुटि गे॥

(९)

जमपुर द्वारे लगे तिन में किवारे,
कोऊ हैं न रखवारे, ऐसे बन के उजारे हैं।
कहै पद्माकर तिहारे प्रन धारे तेऊ,
करि अब भारे सुरलोक को सिधारे हैं॥
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति,
पतित कतारे भवसिंधु ते उधारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे,
और जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं॥

दीन दयाल गिरि

अन्योक्ति

(१)

बहु गुन तो में हैं धुनी ! अति पुनीत तो नीर ।
राखत यह ऐगुन बड़ो बक मराल इक तीर ॥
वक मराल इक तीर नीच ऊँचो न पिछानति ।
सेत सेत सब एक, नहीं ऐगुन गुन जानति ॥
बरनै दीनुदयाल चाल यह भली न है सुन ।
जग में प्रगट, नसाहिं एक ऐगुन तें बहुगुन ॥

(२)

हारो है हे कंज ! फसि चँचरीक तव माहिं ।
याको नीके राखिये दुखित कीजिये नाहिं ॥
दुखित कीजिये नाहिं दीजिये रस धरि आगे ।
एक रावरे हेत सबै इन सौरभ त्यागे ॥
बरनै दीन दयाल प्रेम को पैंडो न्यारो ।
वारिज बंध्यो मलिंद दारु को बेधनिहारो ॥

(३)

रंभा ! झूमत हौ कहा थोरे ही दिन हेत ।
तुम से केते ह्वै गए अरु ह्वै हैं इहि खेत ॥

अरु हू हैं इहि खेत मूल-लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहै दीठि तुमपै प्रति दीने ॥
बरनै दीन दयाल हमैं लखि होत अचंभा ॥
एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रंभा ॥

(४)

टूटे नख रद केहरी वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइकै यह दुख दियो बढ़ाय ॥
यह दुख दियो बढ़ाय चहूँ दिसि जंबुक गाजैं।
ससक लोमरी आदि स्वतंत्र करैं सब गाजै ॥
बरनै दीनदयाल हरिन विहरैं सुख लूटे।
पंगु भयो मृगराज आज नख रद के टूटे ॥

(५)

तेरे ही बिच वस्तु वह जाको जगत सुगंध।
खोजत कहा कुरंग तू ! अंबक आछत अंध ॥
अबक आछत अंध कहा दिसि दिसि भरमै है।
अपनी दिसि अवलोक तबै वाको सुख पैहै ॥
बरनै दीनदयाल मिलै नहिं बाहर हेरे।
अंतर मुख ह्वै ढूंढ़ सुगध सबै घट तेरे ॥

(६)

कोई संगी नहिं उतै है इतही को संग।
पंथी लेहु मिलि ताहि तैं सब सों सहित उमंग ॥
सबसों सहित उमंग बैठि तरनी के माहीं।
नदिया नाव संजोग फेरि यह मिलि है नाहीं ॥
बरनै दीनदयाल पार पुनि भेंट न होई।
अपनी अपनी गैल पथी जैहै सब कोई ॥

(७)

चारों दिसि सूझै नहीं यह नदधार अपार ।
नाव जरजरी भार बहु खेवनिहार गंवार ॥
खेवनिहार गंवार ताहि पर है मतवारो ।
लिए भौंर में जाय जहा जल-जंतु अखारो ॥
बरनै दीनदयाल पथी बहु पौन प्रचारो ।
पाहि पाहि रघुबीर नाम धरि धीर उचारो ॥

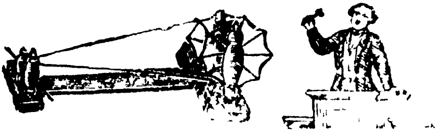

राजा लक्ष्मण सिंह

मेघदूत सार

कारज में उनमत्त भए एक जच्छ दई सब खोइ बडाई।
जाय के दूर रहे बरसेक लौं सौंह बड़ी निज नाथ खवाई॥
जाय बस्यो गिरि राम के आश्रम रूख घनेन में गेह बनाई।
जानकी स्नानन पुन्य प्रताप भई जहँ नीरन में पवित्ताई॥

(२)

बसि ताही महीधर में बिरही कितने एक मास बिताय दयो।
भुज बन्द गये गिर सोरन के इतना थकि दूबर गात भयो॥
फिर लागत मास असाढ़ लख्यो घन सैल पै सोहनो आय छयो।
झुक के मनहू गजराज बली गढ़ ढावन खेल मचाय रह्यो॥

(३)

सावन आय समीप लग्यो तब नारि के प्रान बचावन काज।
बादर-दूत बनावन कों कुशलात सँदेस पठावन काज॥
कूटज-फूल नये कर लै मन कल्पित अर्घ बनावन काज।
बोल उठ्यो हँसते मुख ह्वै वह मेघ तें प्रीति बढ़ावन काज॥

(४)

तू तो है सहाई तन-ताप के सतायन कौ
भयो है बियोगी मैं कुबेर-कोप-पाय के।

छेम कौ संदेसो तातें मेरी प्रान प्यारी पास
अलका पुरी में मीत दीजो पहुँचाय के ॥
देखन ही जोग आछी नगरी बनी है वह
लीनो जच्छ–राजन सु-वास जहाँ आय के।
बागन में बाहरें बिराजे चण्डचूड जाके
नित्त ही अटान रहे चन्द छटा छाय के ॥

(५)

अति उज्जल नीर गँभीरा नदी,
निरदोष हिये के समान भरै ।
मन भावन तो प्रतिबिंब सोहावन,
ताजल जाय परै ही परै ॥
फिर का बिधि होयगो जोग जु तू
निठुराई भला इतनी पकरै ;
सफरी गति चंचल स्वच्छ सरोरुह,
वाकी चितौनि निरास करै ॥

(६)

बिसनार के मांहि बड़ी सरिता,
वह दूर तें दीखति है पतरी।
हरि-रंग के चोर पिये जब तू,
जल वामें झुकाव के देह खरी ॥
लखि लैहिगे खेचर तोहि घने
करि दीठि तुरन्तहि चाव भरी।

मनु भूमि की मोतिन-माल में एक
बड़ी मनि नीलम आनि धरी ॥

(७)

जच्छराज भौनन तें उत्तर की ओर नैक,
ताही अलका में मीत मन्दिर हमारो है।
दूर तें पिछान्यो जात चित्र चारु तोरन तें,
द्वार पै मजै जो मानों चाप इन्द्रवारो है॥
ताके बाग बीच एक नूतन मन्दार वृक्ष,
मेरी तीय पाल्यो मानि पुत्र सो दुलारो है।
गुच्छन के भार ते झुकी है डार डार आछी,
आय जात हाथ फूल बीनत सुखारो है॥

(८)

वाही ताल तीर पै हमारो बन्यो क्रीड़ा-सैल,
चोटी चारु जापै इन्द्रनील की सजाई है।
जात रूप केलन की बारी चहुँ ओर लगी,
नैनन सोहाती भारी सोभा सरसाई है॥
देखि देखि तोहि मीत संग चंचला के आज,
तेरी उनहारि मोहि वाकी सुधि आई है।
जानत हूँ प्यारो खरो मेरी बनिता को वह,
आये सुधि होति चित्त या तें भीरुताई है॥

(६)

बिम्बाधर दाड़िम दसन, निम्ननाभि कृस गात।
बसति तहाँ मृग-लोचनी, युवति छीनि कटि तात॥

ता छिन यदि सोवति मिले, सुख-नींद्र वह बाल।
मौन उहै बैठ्यो तहाँ, तू रहियो कछु काल॥

(१०)

फिर जल सीतल पवन करि, दीजो वाहि जगाय।
मृदुल मालती कलिन सँग, प्रफुलित-चित ह्वै जाय।
चमकत बारी माँहि तुहि, लखिहै दीठि उठाय।
तब तू बातें मन्द धुनि, यों कहियो समुझाय॥

(११)

सखा तेरे पी को जलद प्रिय मैं हूँ पतिवती।
सँदेसो लै वाको तव निकट आयो सुनि साखी॥
चलें मेरी मन्दी धुनि सुनि विदेसी तुरत ही।
करें बांछा खोलें पहुँच घर बेनी तियन की॥

(१२)

"कीनो विधि बैर रोकि दीनो पंथ आवन कौ,
दूर पै बसायो जाय के तो पछतायो है।
चित्त की उमंग तेरे अंगन मिलावै अंग,
दूबरी तुहू तौ वह दूबर सवायो है॥
बिरहा तपाई देह दीरघ तू लेति साँस,
ओऊ इन बातन में तोतें अधिकायो है।
तेरे उतकंठ गात नीर जात नैनन तें,
बाढ़ी अभिलाषा वह आँसू झर लायो है॥

(१३)

सिला पै गेरू तें कुपित ललना तोहि लिखि के।
धर्‌यो जौलौं चाहूँ तन अपन तेरे पगन में॥

चलें आँसू तौलौं दृगन मगरो के उमगि के।
नहीं धाता धातो चहतु हम याहू बिधि मिलें॥

(१४)

मम साप की औधि मिटै तबही जब सेस को सेज पै जागै हरी।
इन चार महीनन को अब तू दृग मीचि बिताय दै भागि-भरी॥
मिलिहैं फिरि कातिकी रातिन में, हम देखिहैं चाँदनी चारु खरी।
बुझि जायगी हौंस सबै जियकी बिरहा दुख जो दिन दूनो करी॥

(१५)

बन्धु काज ममतें इतो स्वीकृत कियो कि नाँहिं।
नटन संक तब मौन तें नैक न मो मन माँहिं॥
तू बिन बोले हूँ बरसि मेटत चातक प्यास।
सज्जनजन उत्तर यही पुजवत जाचक आस॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

गङ्गाछवि

नव उज्वल जलधार, हार हीरक-सी सोहति ।
बिच-बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता-मनि पोहति ।।
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत ।
जिमि नर-गन-मन विविध मनोरथ करत मिटावत ।।
सुभग-स्वर्ग-सोपान-सरिस सब के मन भावत ।
दरसन-मज्जन-पान त्रिविधि भय दूर मिटावत ।।
श्री-हरि - पद - नख - चंद्रकांत मनि द्रवित-सुधारस ।
ब्रह्म-कमंडल-मंडन, भव-खंडन सुर-सरबस ।।
शिव-सिर - मालति - माल, भगीरथ-नृपति-पुन्य-फल ।
ऐरावत - गज - गिरि-पति - हिम-नग-कंठहार कल ।।
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारन ।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन ।।
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेट्यो उठि धाई ।
सपनेहू नहिं तजी, रही अंकम लपटाई ।।
कहूँ बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत ।।

धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा-धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी-नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज, कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुंदरी नहात बारि कर-जुगुल उछारत।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोवत सुंदरि वदन करन अति ही छबि पावत।
बारिध नाते ससि-कलंक मनु कमल मिटावत॥
सुन्दर ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल-बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहाँ जहँ जात रहत तित ही ठहराई।
गंगा-छबि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई॥

यमुना छबि

तरनि तनूजा-तट तमाल—तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहु सुहाये।
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पाव न फल लोभा।
मनु आतप-बारन तीर को सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरि-सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत।
कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन।
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज-सोभा।
कै उमँगे प्रिय प्रिया-प्रेम के अनगिन गोभा।

कै करिकै कर बहु पीय को टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई।
कै पिय-पद-उपमान जानि यहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृंगन मिसि अस्तुति उच्चारत।
कै ब्रज-तियगन-बदन-कमल की झलकत झाईं।
कै ब्रज हरि-पद-परस हेत कमला बहु आईं।
कै सात्त्विक अरु अनुराग दोउ ब्रज-मंडल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी-भौन यहि करि सतधा निज जल धरत।
परत चंद प्रतिबिंब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहरि लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो।
मनु हरि-दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो।
कै तरंग-कर मुकुर लिए सोभित छबि-छायो।
कै रास-रमन में हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिंब लखात है।
कबहुँ होत सत चंद, कबहुँ प्रकटत दुरि भाजत।
पवन-गवन-बस बिंब रूप जल मैं बहु साजत।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करति कलोलै।
कै बाल-गुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत-उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती।
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन-जल।
कै तारागन गगन लुकत प्रगटत ससि अबिकल।

कै कालिंदी नीर-तरंग जिते उपजावत।
तितने ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत।
कै बहुत रजत-चकई चलत, कै फुहार-जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत।
कूजत कहुँ कलहंस, कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारंडव उड़त, कहूँ जल कुक्कुट धावत।
चक्रवाक कहुँ बसत, कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक, पिक जल कहुँ पियत, कहूँ भ्रमरावलि गावत।
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु, रोर बिबिध पंछी करत।
जलपान, न्हान करि सुख-भरे तट सोभा सब जिय धरत।

चूरन का लटका

चूरन अमलबेद का भारी, जिसको खाते कृष्ण मुरारी।
मेरा पाचक है पंचलोना, जिसको खाता स्याम सलोना।
हिंदू-चूरन इसका नाम, बिलायत-पूरन इसका काम।
चूरन ऐसा हट्टा कट्टा, कीना दाँत सभी का खट्टा।
चूरन चला दाल की मंडी, इसको खाएंगी सब रन्डी।
चूरन अमले सब जो खावैं, दूनी रिशवत तुरत पचावैं।
चूरन नाटक वाले खाते, इसकी नकल पचाकर लाते।
चूरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।
चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकिल-अजीरन-रोग।
चूरन खावैं एडिटर जात, जिनके पेट पचै नहिं बात।
चूरन पूलिस वाले खाते, सब कानून हजम कर जाते।

अपना स्वभाव

सेवक गुनीजन के, चाकर चतुर के हैं,
कबिन के मीत, चित हित गुन गानी के,
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
'हरिचंद' नगद-दमाद अभिमानी के।
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह, नेही
नेह के दिवाने सदा सूरत निमानी के,
सरबस रसिक के, दास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के।

—:※:—

बद्री नारायण चौधरी (प्रेमघन)

प्रार्थना

वारों अंग अंग छवि ऊपर अनंग कोटि,
अलकन पर कालो अवली मलिन्द की।
वारों लाख चन्द वा अमन्द मुख सुखमा पै,
वारौं चाल पै मराल गति हूँ गयन्द की ॥
वारों प्रेमघन तन धन गृह काज साज,
सकल समाज लाज गुरुजन वृन्द की।
वारौं कहा और नहिं जानौ बीर वापै अब,
बसी मन मेरे बाँकी मूरति गोविन्द की ॥
नव नील नीरद निकाई तन जाकी जापै,
कोटि काम अभिराम निदरत वारें हैं।
प्रेमघन ! बरसत रस नागरिन मन,
सनकादि शंकर हू जाको ध्यान धारे हैं ॥
जाके अंस तेज दमकत दुति सूर ससि,
घूमत गगन में असंख्य ग्रहतारे हैं।
देवकी के बारे जसुमति प्रान प्यारे,
सिर मोर पुच्छवारे वे हमारे रखवारे हैं ॥

शोकाश्रु

अथयो हरिचन्द अमन्द सो भारत चन्द चहूँ तम छाय गये।
तरु हिन्दुन के हित उन्नति को बढ़तै अबहीं मुरझाय गयो ॥

गुनराशि जवाहिर की गठरी अनमोल सो कौन उठाय गयो।
नित जाके गरूर से चूर रह्यो वह हिन्द ते हाय हेराय गयो॥

हास्य बिन्दु

एक समय सूसा के मन्दिर नोक राज महराज सिधारे।
शेक हैंड कै तुरत सूम जी इज़ी चेयर पै लै बैठारे॥
आइस मिश्रित सोडावाटर भरि हमला दै चुरुट निकारे।
सुलगायो घसि मैच बिहँसि कहि एक प्याली ही पीअहु प्यारे॥
ब्रेक फास्ट पुनि टिफिन खाय अरुडिनर चाभिश्रम सकल बिसारे।
आज भये कृत कृत्य देखि प्रभु तुमहिं भाग निज गनि बहु भारे॥

नागपंचमी

नागपंचमी निकट जानि बहु लोग अखारे।
लरत भिरत सीखत नव दाँव पेच प्रन धारे॥
जोड़ तोड़ बदि देत बढ़ाय अधिक निज कसरत।
हैं तैय्यार पंचमी के वे दंगल जीतत॥
सीखत चटकी डाँड़ विविध लकड़ी के दांवन।
बांधत कूरी किते लोग लागत ही सावन॥
संध्या समय आय सौ सौ जन कूदत कूरी।
बीस हाँथ लों लाँघि दिखावत बहु मगरूरी॥
होत पंचमी के दिन निरनय इन कलान को।
सम वयस्क, समकृपा कुशल जन, मध्य मान को॥

—:o:—

श्रीधर पाठक

मयङ्क के प्रति

ए हो, सुघर सुभ्रांशु बंकिमा संशोभित शशि।
तू मोहि करत सशंक आजु अति रैन अंक बसि॥
होइ न निश्चय मोहिं नील-नभ में को है तू।
जोह्यौ जो शशि काल्हि आजु का नहिं सो है तू॥
व्योम - पंक - प्रस्फुटित सेत - सरसिज - दल है तू।
पारिजात सों पतित मुकुल कोइ कोमल है तू
कुपित काम - नृप - धनुष, बक्र परजन्य शस्त्र कोइ।
किधौं भिन्न हरि-चक्र, स्वर्ग कौ अन्य शस्त्र कोइ॥
मन्दाकिनि तट पर्यो तृषित जल - हीन मीन कोइ।
तड़पि रह्यो तन-छीन, व्योमचर कै नवीन कोइ॥
प्रथम काल कौ बच्यौ प्रकृति कौ बाल खिलौना।
नजर बिडारन रच्यौ बजरबट्टू कै टौना॥
कै बिरञ्चि - मस्तक - त्रिपुण्ड - आभास मनोहर।
कै भारत - तप - तेज - पिंड को खंड मंजुतर॥
कै अछूत ब्रह्माड - छोर कौ छिलका छूट्यौ।
किधौं प्रेम - आनन्द - अमृत कौ मटका टूट्यौ॥
किधौं नंदिनी - शृंग व्योम पट में प्रतिबिंबित।
किधौं कुशंक त्रिशंकु अधर में है अवलम्बित॥
किधौं स्वर्ग फुलवारी के माली कौ हँसिया।
कै अमृत एकत्र करन की सेत अँकुसिया॥

रवि-हय-खुर की छाप किधौं, कै नाल नुकीली।
काल चक्र की हाल परी खंडित कै कीली॥

काश्मीर-सुषमा

प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेस छानिक छबि छिन-छिन धारति॥
बिमल - अंबु - सर - मुकुरन महँ मुख-बिंब निहारति।
अपनी छबि पै मोहि आप ही तन मन वारति॥
सजति, सजावति, सरसति हरसति, दरसति प्यारी
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चितरसारी॥
बिहरति बिविध बिलास भरी यौवन के मद सनि।
ललकति किलकति पुलकति निरखति थिरकति बनि ठनि॥
मधुर मञ्जु छबि - पुञ्ज छटा छिरकति बन - कुञ्जन।
चितवति रिझवति हँसति डँसति मुसक्याति हरति मन॥
यहि सुरूप सिंगार रूप धरि-धरि बहु भाँतिन।
सर, सरिता, गिरि, सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन॥
पूरन करिबे काज कामना अपने मन की।
किंकरता करि रह्यो प्रकृति - पंकज - चरनन की॥
चहुँदिसि हिमगिरि-शिखर, हीर-मनि मौलि-अवलि मनु।
स्रवत सरित - सित-धार द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु॥
फल फूलन छबि छटा छई जो बन उपवन की।
उदित भई मनु अवनि-उदर सों निधि रतनन की॥
तुहिन-सिखर, सरिता, सर, बिपिनन की मिलि सो छबि।
छई मण्डलाकार, रही चारिहुँ दिसि यो फबि॥
मानहुँ मनिमय मौलि - माल - आकृत अलबेली।
बाँधी बिधि अनमोल गोल भारत - सिर सेली॥

अर्द्ध चन्द्र सम सिखर-श्रैनि कहुँ यों छवि आई।
मानहुँ चंदन धौरि, गौरि-गुरु खौरि लगाई॥
पुनि तिन स्रैनिन बीचि बितस्ता रेखु जु राजति।
वैष्णव 'श्री' अरु सिव त्रिसूल की आभा भ्राजति॥
हिम स्रैनिन सों घिरयौ अद्रि-मंडल यह रूरौ।
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुषमा-सुख पूरौ॥
बहु बिधि दृश्य अदृश्य कला-कौशल मो छायौ।
रच्छन निधि नैसर्ग मनहुँ बिधि दुर्ग बनायौ॥
अथवा बिमल बटोरि विश्व की निखिल निकाई।
गुप्त राखिबे काज सुदृढ़ संदूक बनाई॥
कै यह जादू भरी विश्व बाजीगर थैली।
खेलत में खुलि परी सैल के सिर पै फैली॥
खिली प्रकृति-पटरानी के महलन फुलवारी।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार - पिटारी॥
कै यह बिकसत ब्रह्म - बाटिका की कोउ क्यारी।
जोगिराज ने इहाँ योग - बल ऐंचि उतारी॥
कै सामग्री सहित भैरवी - चक्र मँझारी।
परि कल्पित करि धरी शक्ति - पूजन की थारी॥
किधौं चढ़ायो धाता ने भारत के मस्तक।
माया - मालिनि रच्यौ चारु कुसुमन को गुच्छक॥
कामधेनु पै रवि - हय की खुर छाप सलोनी।
कै बसुधा पै सुधा धार ब्रह्मद्रव द्रोनी॥
परम पुरुष की पटरानी माया कौ स्यंदन।
मण्डप छत्र उतारि धर्‍यौ उतर्‍यौ कै नन्दन॥
कै जब लै शिव चले दक्ष तनया के अंगन।
गिरि सुंगन गिरि खिल्यौ प्रिया के कर कौ कंगन॥

बिष्णु नाभि ते उग्यौ सुन्यौ जो कमल सहस्र दल।
कै यह सोई सुभग स्वयंभू कौ सुजन्म थल॥
प्रकृति नटी को पटी रहित प्रगट्यौ नाटक घर।
कै सिवतंत्र सटीक खुल्यौ बिलसित टिखटी पर॥
कै त्रैलोक्य विभूति भरित अवधूत कमण्डल।
कै तप पुंज प्रसूत बिश्व सोभा श्री मण्डल॥
सुरपुर अरु सुरकानन की सुठि सुन्दरताई।
त्रिभुवन मोहनि करनि कबिनु बहु बरनि सुनाई॥
सो सब कानन सुनी, किन्तु नैननि नहिं देखी।
जहँ तहँ पोथिन पढ़ा, पै सु परतच्छ न पेखी॥
सो कबियन जो कही कलित सुरलोक निकाई।
याही को अवलोकि एक कल्पना बनाई॥
सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को है सुन्दर।
को शोभा को भौन रूप को कौन समुन्दर॥
काको उपमा उचित दैन दोउन में काको।
याकौ सुरपुर की अथवा सुरपुर कौ याको॥
याकौ उपमा याही की मोहि देत सुहावै।
या सम दूजौ ठौर शृष्टि में दृष्टि न आवै॥
यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुर कानन सुन्दर।
यहि अमरन को ओक, यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

शरत्सौंदर्य्य

काँस के फूल दुकूल खिले, अरबिन्दन में मुख सुन्दरताई।
बोलन मत्त मरालन की कल नूपुर केरि करैं समताई।
सोहत धान पकेन की पाँति सोई पतरे तन की सुघराई।
या बिधि रूप सिंगार किये ऋतु सर्द नई दुलही सम आई॥ १॥
काँसन सों धरनी कौ शरीर, निसा नव निर्मल चन्द कलान सों।

हंसन सों नदियान को नीर, तड़ाग कमोदन के कुनबान सों ॥
कानन के तट फूलन भार झुके छद सप्तन के बिरवान सों ।
सेत भये सब या ऋतु के गुन, बाग चमेलिन की कलियान सों ॥ २ ॥
चाँदी के पत्रन के सम ऊजरे, सङ्ख मृनाल से सुन्दर धौरे ।
वायु के बेग फिरें बदरा, छितराने अनन्त उते उत दौरे ।
अम्बु घटे तें भए हलुके, तितरैं बितरैं न रहैं इक ठौरे ।
राजत राज समान अकास, मनो तिहि मस्तक चौंर हैं ढौरे ॥ ३ ॥
तारे खिले अति नीक अकास, सोई वर भूषन अंग सजाई ।
मेघ की रोक सों मुक्त भए, मुख चन्द की ज्योति अनूप निकाई ॥
चाँदनी चारु खरी छिटकी, सोइ स्वच्छ दुकूलन की सुघराई ।
यों नव बालसी ये रतियाँ, नित बाढ़न लागीं नई छबिपाई ॥ ४ ॥
बतकें निज आनन गाड़ि तरंगन, की अवलीन झुलावति हैं ।
कल हंसऽऽ सारस की सुठि पंगति तीर पै भोर मचावति हैं ॥
रज छाइ सरोजन की अरुनाई, सो ताकी निकाई बढ़ावति हैं ।
पुनि सब्द मरालन के सों तरंगिनि प्रीति हिये उपजावति हैं ॥ ५ ॥

प्रकृति वर्णन

जेठ की दारुन आतप से, तप के जगती तल जावै जला ।
नभ मंडल छाया मरुस्थल सा, दल बाँध के अन्धड़ आवै चला ॥
जल हीन जलाशय व्याकुल हैं पशु पक्षी प्रचंड है भानुकला ।
किसी कानन कुंज के धाम में प्यारे, करैं बिसराम चलौ तो भला ॥
काली घटा का घमंड घटा नभ मण्डल तारका वृन्द खिले ।
उजियाली निशा छबिशाली दिशा अति सोहैं धरातल फूले फले ॥
निखरे सुथरे बनपन्थ खुले तरुपल्लव चन्द्र कला से धुले ।
बन शारदी चन्द्रिका चादर ओढ़ैं लसैं समलंकृत कैसे भले ॥

भारत देश

जय जय प्यारा भारत देश
जय जय प्यारा जग से न्यारा, शोभित सारा देश हमारा।
जगत मुकुट जगदीश दुलारा, जय सौभाग्य सुदेश ॥ १ ॥
जय जय०

स्वर्गिक शीस फूल पृथ्वी का, प्रेम मूल प्रिय लोक त्रयीका।
सुललित प्रकृति नटी का टीका, ज्यो निशि का राकेश ॥ २ ॥
जय जय०

जय जय शुभ्र हिमाचल शृङ्गा, कलरव-निरत कलोलिन गंगा।
भानु प्रताप चमत्कृत अंगा, तेज पुञ्ज तप वेश ॥ ३ ॥
जय जय०

जग मे कोटि कोटि जुग जीवे, जीवन सुलभ अमिय रस पीवै।
सुखद वितान सुकृत का सीवे, रहे स्वतंत हमेश ॥ ४ ॥
जय जय०

महावीर प्रसाद द्विवेदी

शरीर रक्षा

(१)

शरीर ही के हित काम सारे,
शरीर ही से सुख हैं हमारे।
आत्मा नहीं धार्य्य बिना शरीर,
जैसे बिना पिञ्जर बद्ध कीर ॥

(२)

शरीर ते पुण्य, परोपकार,
शरीर ही है गुण का अगार।
शरीर ही है सुर-लोक-द्वार,
शरीर ही से सुविचार-सार ॥

(३)

शरीर ही से पुरुषार्थ चार,
शरीर ही है महिमा अपार।
शरीर-रक्षा पर ध्यान दीजै,
शरीर-सेवा सब छोड़ कीजै ॥

कोकिल

(१)

कोकिल अति सुन्दर चिड़िया है,
सच कहते हैं अति बढ़िया है।
जिस रङ्गत के कुँवर कन्हाई,
उसने भी वह रंगत पाई॥

(२)

अथवा जामुन का रङ्ग जैसे,
इसका भी होता है तैसे।
ज्योंही चैत मास लगता है,
जाड़ा अपने घर भगता है॥

(३)

त्योंही यह अति मीठी बानी,
नित्य बोलती है रस सानी।
आम-मौर इसको अति प्यारा,
सत्य सत्य यह बचन हमारा॥

(४)

भौंरो के सुगन्ध की माती,
कुहू कुहू यह सब दिन गाती।
मन प्रसन्न होता है सुनकर,
इसके मीठे बोल मनोहर॥

(५)

सम्मुख आम वृक्ष के ऊपर,
देखो वह आती है उड़कर।
बोलो मत; उँगली न उठाओ,
आओ वहीं चलें सब आओ॥

(६)

मीठी तान कान में ऐसे,
आती है वंशी धुनि जैसे।
सिर ऊँचा कर मुख खोलै है,
कैसी मृदु बानी बोलै है॥

(७)

इसमें एक और गुण भाई,
जिससे यह सबके मन भाई।
यह खेती के कीड़े सारे,
खा जाती है बिना बिचारे॥
जिस परमेश्वर ने दिया, यह पक्षी गुण-धाम।
प्रेम-सहित कर जोड़कर, उसे अनेक प्रणाम॥

नागरी तेरी यह दशा!

(१)

श्रीयुक्त नागरि! निहारि दशा तिहारी,
होवै विषाद मन माँहि अतीव भारी।
हा! हन्त लोग कत मातु तुम्हें बिसारी,
सेवैं अजान उदूँ उर माँहि धारी॥

(२)

अत्यन्त बालकहु मास गये छ, साता,
होवैं प्रवीण सिखि ताहि छिपी न बाता।
मूढ़ाति मूढ़ जिन दीख न पाटशाला,
तेऊ पढ़ैं तुहि बिना श्रम सर्वकाला॥

(३)

तेरी समान रुचिरा, सरला, रसाला,
शोभायुता, सुमधुरा, सगुणा, विशाला।
भाषा न अन्य यहि काल अहो दिखाई,
बोलें निशंक हम यों स्वभुजा उठाई॥

(४)

श्री सूरदास, तुलसी अरु खान खाना,
क्षेमेन्द्र, केशव, कवीन्द्र, कवीश नामा।
छायो दिगन्त यश जो इनको अपारा,
सो है प्रसाद तव नागरि! देवि! सारा॥

(५)

अन्यानि जाति जन हूं बन भक्त तेरे,
गावै त्वदीय गुण नित्य नये घनेरे।
तौ जो निहारि हम सर्व करैं न पूजा,
हा हा! अनर्थ नहिं या सम अन्य दूजा॥

(६)

"देशोपकार करिये" इमि बोलि बीरा।
लै, लाङ्ग लेकचर उड़ावत जे बरप्रवीरा।
त्व नाम ते सुनत कोसन दूरि भागैं,
पत्रादि हू लिखन में तुहि नानुरागैं॥

(७)

जाके प्रचार बिनु लाखन लोग धाई,
लै लै समन्स बहु ढूँढ़त गाँव जाई।
पावैं तऊ न तिन बाँचन-हार भाई,
ताते, भये विमुख तासन, का भलाई?

(८)

जाके बिना कचहरी घर लोग घेरे,
ताकैं परारि मुख जाय बड़े सबेरे।
न प्रेम तासु जिनके मन माहि जागै,
हा! हा! विलोकि तिन पातक पुंज लागै॥

(९)

देखो स्वदेश-नर-रत्न! करो विचारा,
सत्कार नागरहि केर करे उबारा।
हे! हेलना न करि तासु, सुनो पुकारा।
कीन्हें बिलम्ब बिगरै निज काज सारा॥

(१०)

सप्रेम, जोरि कर, तोहिं मम प्रणामा,
त्वद्भक्त जे कहुँ कहुँ चमकैं सुनामा।
मेरो नमोऽस्तु तिनहूँ कहँ बार बारा,
ते धन्य, धन्य कुल दीप कृतोपकारा॥

हिमालय

(१)

दिव्य दिशा उत्तर में शोभित देवात्मा का अधिकारी,
भूधर पति अति पृथुल हिमालय हिममण्डित मस्तक धारी।

पूर्व और पश्चिम पयोधि के बीच बढ़ा कर तनु भारी,
महीमाप के दंड तुल्य है रक्खा बहु विस्मय कारी॥

(२)

रत्न और औषधी चमकती हैं जिसमें नित बहुतेरी,
नहीं न्यून उसकी शोभा को कर सकती हिम की ढेरी।
चन्द्रबिम्ब के भीतर जैसे नहीं कलंक दिखाता है,
तैसे ही गुणगण-समुद्र में एक दोष छिप जाता है॥

(३)

शृङ्गों पर, अकाल-सन्ध्या-सम, धातु विचित्र बिछाता है,
तिससे जो अप्सराबर्ग को भूषण युक्त बनाता है।
रश्मि रासि दिनकर की जिसके शिखरों पर छवि पाती है
अधो भाग में मेघमण्डली जलधारा बरसाती है॥

(४)

हिम-धोई महि में गज-मुक्ता देख जहाँ पर बिखराये,
कहते हैं किरात "गज-हन्ता सिंह इसी मारग आये।"
बाँस-वृक्ष के छेदों में जो भर समीर न्यारा-न्यारा,
गायक किन्नर-गण को देता मानो ताल परम प्यारा॥

(५)

सुरा गाय अपनी पूंछों से जिस पर चमर चलाती हैं,
"है यह महीधरों का राजा" यह मानौ बतलाती हैं।
थके किरात जहाँ पाते हैं सुर सरि-कण-लाने वाला,
विमल वायु जिसने की कम्पित देवदारु-तरुवर-माला॥

(६)

जिसके उच्च शिखर-गत जल के कमलों को नीचे रह कर,
नित्य ऊर्ध्वगामी किरणों से, बिकसित करता है दिनकर।

शक्ति देख जिसकी धरणी के कारण करने की अति तर,
यज्ञ भाग भूधर पतिपद भी, विधि ने दिया जिसे सुखकर ॥

(७)

रवि के भय, उलूक-सम, दिन में; अन्धकार जब आता है,
अपनी गुहा बीच रख, तो गिरि, उसके प्राण बचाता है।
महा-नीच भी शरणागत को, जन महान वर-विज्ञानी।
अभयदान देते हैं, तत्क्षण, कहते हुए मृदुल बानी ॥

नाथूराम शङ्कर

(१)

भरिबो है समुद्र को शम्बुक में छिति को छिगुनी पर धारिबो है।
बँधिबो है मृनाल सों मत्तकरी जुही फूल सों सैल बिदारिबो है॥
गनिबो है सितारन को कबि 'शंकर' रेणु सो तेल निकारिबो है।
कविता समुझाइबो मूढ़न को सविता गहि भूमि पै डारिबो है॥

(२)

बोझ लदे हय हाथिन पै खर खात खड़े नित जात खुजाये।
बन्धन में मृगराज पड़े शठ स्यार स्वतंत्र पुकारत पाये॥
मानसरोवर में बिदरैं बक, 'शंकर' मार मराल उड़ाये।
मान घटा गुरु लोगन को, जग बंचक पामर पञ्च कहाये॥

(३)

महिमा उमड़ै लघुता न लड़ै जड़ता जकड़ै न चराचर को।
शठता सटकै मुदिता मटकै प्रतिमा भटकै न समादर को॥
बिकसै विमला शुभकर्म कला पकड़ैं कमलाश्रय के करको।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, करदे कविता कवि शंकर को॥

(४)

विदुषी उपजैं क्षमता न तजैं ब्रत धार भजैं सुकृती वर को।
सधवा सुधरैं विधवा उबरैं सकलंक करैं न किसी घर को॥
दुहिता न बिकैं कुटनीन टिकैं कुलबोर छिकैं तरसैं दर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को॥

(५)

ईश गिरिजा को छोड़, शीशु गिरजा में जाय,
'शङ्कर' स्वदेशी लोग मिस्टर कहावेंगे।
कोट, पतलून, बूट, हैट, कम्फर्टर डाँट,
जाकिट की पाकिट में वाच लटकावेंगे॥
घूमेंगे घमण्डी बने रण्डी का पकड़ हाथ,
पियेंगे बरण्डी मीट होटल में खावेंगे।
फारसी की छार सो उड़ाय, अंगरेजी पढ़,
मानों देवनागरी को नाम ही मिटावेंगे॥

(६)

तेज न रहेगा तेज धारियों का नाम को भी,
मङ्गल मयङ्क मन्द मन्द पड़ जाँयगे।
मीन बिन मारे मर जाँयगे सरोवर में,
डूब डूब 'शंकर' सरोज सड़ जाँयगे॥
चौंक चौंक चारों ओर चौकड़ी भरेंगे मृग,
खञ्जन खिलाड़ियों के पङ्ख झड़ जाँयगे।
बोलो इन आँखियों की होड़ करने को अब,
कौन से अड़ीले उपमान अड़ जाँयगे॥

(७)

चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥टेक॥
खेल पसारे बालकपन में, उकसे रहे किशोर॥
आगे चलके चन्द्रमुखी; चाहक बने चकोर॥
दुहिता पुत्र घने उपजाये, भोग बटोर बटोर।
अगुवा बने बढ़े कुनवा के; पकड़ा पिछला छोर॥

पचके गाल अंग सब भूले, अटके संकट घोर।
शंकर जीत जरा ने जकड़, उतरी मद की खोर॥

(८)

नीकी करनी संसार में, नामी नर कर जाते हैं ॥टेक॥
जो ध्रुव धर्म वीर होते हैं, पर दुख देख देख रोते हैं,
सोविशाल संसृति सागर को पल में तर जाते हैं॥
वृथा काल को खाने वाले, बीज पाय के बोने वाले,
कायर क्रूर कुपूत कुचाली यों ही मर जाते हैं॥
धर्म कर्म का मर्म न जानै, केवल मनमानी तक तानै,
ऐसे बकवादी समाज में; संशय भर जाते हैं॥
मिटगये नाम नीच कपाटन के, शंकर सुयश शेष है तिनके,
जिनके जीवन के अनुगामी, जीव सुधर जाते हैं॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

संध्या का वर्णन

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा ॥ १ ॥
विपिन बीच विहंगम वृन्द का।
कल निनाद विवर्द्धित था हुआ।
ध्वनिमयी—विविधा विहंगावली।
उड़ रही नभ मण्डल मध्य थी ॥ २ ॥
अधिक और हुई नभ-लालिमा।
दश-दिशा अनुरंजित हो गई।
सकल-पादप-पुञ्ज हरीतिमा।
अरुणिमा विनिमज्जित सी हुई ॥ ३ ॥
झलकने पुलिनों पर भी लगी।
गगन के तल की यह लालिमा।
सरि सरोवर के जल में पड़ी।
अरुणता अति ही रमणीय थी ॥ ४ ॥
अचल के शिखरों पर जा चढ़ी।
किरण पादप-शीश-विहारिणी।
तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला।
गगन-मण्डल मध्य शनैः शनैः ॥ ५ ॥

ध्वनि-मयी करके गिरि-कन्दरा।
कलित-कानन केलि निकुञ्ज को।
ब्रज उठी मुरली इस काल ही।
तरणिजा-तट-राजित-कुञ्ज में ॥ ६ ॥

क्वणित मंजु-विषाण हुये कई।
रणित शृंग हुये बहु साथ ही।
फिर समाहित-प्रान्तर-भाग में।
सुन पड़ा स्वर धावित-धेनुका ॥ ७ ॥

निमिष में वन-व्यापित-वीथिका।
विविध-धेनु विभूषित हो गई।
धवल-धूसर-वत्स-समूह भी।
विलसता जिनके दल साथ था ॥ ८ ॥

जब हुये समवेत शनैः शनैः।
सकल गोप सधेनु समण्डली।
तब चले ब्रज-भूषण को लिये।
अति अलंकृत-गोकुल-ग्राम को ॥ ९ ॥

गगन मण्डल में रज छा गई।
दश-दिशा बहु-शब्दमयी हुई।
विशद-गोकुल के प्रति-गेह में।
बह चला वर-स्रोत विनोद का ॥ १० ॥

सकल वासर आकुल से रहे।
अखिल- मानव - गोकुल - ग्राम के।
अब दिनान्त विलोकत ही बढ़ी।
ब्रज - विभूषण - दर्शन - लालसा ॥ १० ॥

राधा की शोभा

रूपोद्यान प्रफुल्ल-प्राय-कलिका राकेन्दु-बिम्बानना ।
तन्वंगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली ।
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य-लीला-मयी ।
श्री राधा-मृदुभाषिणी मृगदृगी-माधुर्य्य मन् मूर्ति थीं ॥ १॥
फूले कंज-समान मंजु-दृगता थी मत्तता-कारिणी ।
सोने सी कमनीय-कांति तनकी थी दृष्टि-उन्मेषिणी ॥
राधा की मुसकान की मधुरता थी मुग्धता-मूर्ति सी ।
काली-कुंचित-लम्बमान अलकें थीं मानसोन्मादिनी ॥ २ ॥
नाना-भाव-विभाव-हाव कुशला आमोद आपूरिता ।
लीला-लोल-कटाक्ष-पात-निपुणा भ्रूभंगिमा-पंडिता ।
वादित्रादि समोद-वादन-परा आभूषणा भूषिता ।
राधा थीं सुमुखी विशाल-नयना आनन्द-आन्दोलिता ॥ ३ ॥
लाली थी करती सरोज-पग की भूपृष्ठ को भूषिता ।
बिम्बा विद्रुम को अकान्त करती थी रक्तता ओष्ट की ।
हर्षोत्फुल्ल-मुखारविन्द-गरिमा सौंदर्य्य आधार थीं ।
राधा की कमनीय कान्त छवि थी कामांगना मोहिनी ॥ ४ ॥
सद्वस्त्रा-सदलंकृता गुणयुता सर्वत्र सम्मानिता ।
रोगी वृद्ध जनोपकारनिरता सच्छास्त्र चिन्तापरा ।
सद्भावातिरता अनन्य-हृदया सत्प्रेम-संपोषिका ।
राधा थीं सुमना प्रसन्नवदना स्त्रीजाति-रत्नोपमा ॥ ५ ॥

एक बूंद

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से,
थी अभी एक बूंद कुछ आगे बढ़ी ;

सोचने फिर-फिर यही जी में लगी .
आह क्यों घर छोड़कर है यों कढ़ी !
देव, मेरे भाग्य में है क्या बदा,
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में,
या जलूँगी गिर अंगारे पर किसी,
चू पड़ूंगी या कमल के फूल में।
वह गई उस काल एक ऐसी हवा,
वह समुन्दर ओर आई अनमनी;
एक सुन्दर सीप का मुंह था खुला,
वह उसी में जा पड़ी मोती बनी।
लोग यौंही है झिझकते सोचते,
जब कि उनको छोड़ना पड़ता है घर ;
किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें,
बूँद लौं कुछ और ही देता है कर।

प्रलय

सारे लोक लोकपति सहित बिलोप ह्वै हैं,
कुल कला-निधि काल-गाल मैं समावैंगे।
तारकता तजि तजि तारक तिरोहित ह्वै,
प्रलय पयोधि मैं बलूले पद पावैंगे ॥
'हरि औध' देव देव-लोक हूँ दुरैंगे कहूं,
दिवि मैं दिगम्पति न दिपति दिखावैंगे।
मिलि जैहैं सारे भूत हीन पंच भूत मांहि,
एक दिन पंच-भूत भूत बन जावैंगे ॥ १

धाँय धाँय दहिहै धरातल मसाल-सम,
अगनित खानैं ज्वाल-माल-जाल जनि हैं।

पावक ते पूरित दिगन्त हूँ दुरन्त ह्वै है,
दव के अधर में बितान बहु तनिहैं॥
'हरि औध' ऐहै ऐसो बार जब नाना लोक,
लोक-पाल-सहित हुतासन में सनिहैं।
सूर-ससि जरि जैहैं प्रलय-अँगारे माँहि,
सारे तारे तपत-तवा की बूँद बनिहैं॥ २॥

ज्वाल-माला-बमन सहस-फन-सेस कैहैं,
काल-ज्योति ज्वलित-दिगन्तन में जगिहैं।
मदन-दहन को दहन-पटु खुलैगो नैन,
दाहकता दाहत त्रिसूली की उमगिहैं॥
'हरिऔध' प्रबल प्रलय-परिपाक भये,
लोक-ओक पावन बिपाक-पाक पगिहैं।
परम-प्रचण्ड-मारतण्ड उगिलैगो आग,
अनल-अखण्ड माहिं मण्डल में लगिहै॥ ३॥

कर को प्रहार तारकावलि को लोप कैहै,
दिवि को दलैगो, दिवा-पति को मिटावैगो।
नाना-अंग-चालन दिगन्तन को कैहै चूर,
ध्वंस कै धरातल को धूरि में मिलावैगो॥
'हरि औध' होत महाकाल को कराल-नृत्त,
सहस-बदन-ब्याल-वैभव बिलावैगो।
लात लगे टुटिहै अतल-तल पत्ता-सम,
पल मैं पताल हू को लत्ता उड़ि जावैगो॥ ४॥

लोकन की सत्ता औ महत्ता महा-भूतन की,
प्रलय महान बिकराल कर लूटैगो।
अन्तक अनन्त की अनन्तता को अन्त ह्वै है,
टूक टूक ह्वैहै ते छपाकर न छूटैगो॥

'हरि औध' हर के अकाण्ड ताण्डवों के भये ,
भाण्ड के समान सारो ब्रह्माण्ड फूटैगो ।
प्रबल-प्रचण्ड- मारतण्ड खण्ड खण्ड ह्वै है ,
परम-उदण्ड यम--काल-दण्ड टूटैगो ॥५॥

एक तिनका

मैं घमण्डों में भरा ऐंठा हुआ ।
एक दिन जब था मुँडेरे पर खड़ा ।
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ ।
एक तिनका आँख में मेरी पड़ा ॥
मैं झिझक उट्ठा हुआ बेचैन सा ।
लाल होकर आँख भी दुखने लगी ॥
मूँठ देने लोग कपड़े की लगे ।
ऐंठ बेचारी दबे पाँवों भगी ॥
जब किसी ढब से निकल तिनका गया ।
तब समझने यों मुझे ताने दिये ॥
ऐंठता तू किस लिये इतना रहा ।
एक तिनका है बहुत तेरे लिये ॥

किशोरीलाल गोस्वामी

गङ्गावतरण

तरलित तुमुल तरंगवती सुरधुनी सुशीला ।
करत पुनीत व्योमपथ उतरति है करि लीला ॥

सावधान दिक्कुञ्जरधरा ! तुहू सुधि इत दै ।
रे फनीस ! धरु याहि कमठ ! ताही मधि चित दै ॥

हैमवती यह बहिन उमा की परम पुनीता ।
आवत पाप-पुञ्ज जन सुगति देन मनचीता ॥

हटौ, बचौ रे गगन बिहारी ! मारग छोरौ ।
नत कन्धार सों विनय सहित तृन है तृन तोरौ ॥

भानुबन्स अवतंस महा भागवत भगीरथ ।
कियो नाम तू हू ने या छिति पै सुभ तीरथ ॥

अब राजर्षि ! तपस्या तेरी यह फल लाई ।
"सजग होहु शिव !" गगन गिरा यों भाखि थिराई ॥

जँह लगि हो अवकाश व्योम भारती समोई ।
वहीं प्रतिध्वनि आघात प्रतिघात विलोई ॥

डगमगान दिक्कुञ्जर, धरनी डोलन लागी ।
शेष सगमगाने, कच्छप की थिरता भागी ॥

देवासुर नर नाग चराचर सरकि सकाने ।
जलचर थलचर नभचर कम्पित गात चुपाने ॥

पाइ बिपुल अवकाश आज आकाश, शब्दमय।
कियो नाम निज सत्य भाषि "गङ्ग! जय जय जय"!!

कोटि भानु गति गर्व खर्व करि धाई गङ्गा।
पितागेह तजि व्योमवीथि मधि आई गङ्गा॥

ठठकि एक छिन गगन मध्य मुसकाई गङ्गा।
चितै शम्भु निज गति की बात सुनाई गङ्गा॥

हे हे भाम! भवानीपति! मम बेग न जानहु।
क्यों बरबस मम भार सहन को तुम हठ ठानहु॥

सहित तुमहिं कैलास भेदि पाताल सिधैहौं।
निज छोटी भगिनी को तब मुख कहा दिखैहौं॥

या बावरे भगीरथ की मति पै तुम भूले।
ममक होइ नग गहन चले दैवहिं प्रतिकूले॥

अस्तु, 'होहु तुम सजग' भाषि यों अहंमिति बानी।
नभ मण्डल तें बेगहि धाई, चितै भवानी॥

सुनत व्यंगमय अहमिति वचन विषम लोचन यों।
तमकि उठे रिस घोर मूर्ति धरि कोप पुञ्ज ज्यों॥

चाँपि पगन कैलास रौद्र वपु काँट कर दीन्हे।
पृष्ठभाग में जुगुल करन निज शूलहिं लीन्हे॥

फट फटाइ निज जटा तिहू लोचन रिस बोरे।
ज्वाला माला भीषन आसन ओप अथोरे॥

करि ऊँचे मस्तक गङ्गा दिसि नयन तरेरे।
वाकी बेगवती तरलित गति हू की हेरे॥

अभिमानिनि के गर्व ग्वर्ब करिबे हित ठाढ़े।
मूर्तिमन्त रस रौद्र मनहुँ छिन छिन प्रति बाढ़े॥

बिनय सहित ठाढ़े है राजा चितव शम्भु दिसि।
अति सकात निज हृदय मध्य लखि शङ्कर की रिसि॥

कबहुँ कबहुँ गंगा की दिसि हूँ पै दृग फेरत।
पुनि तामस अधिदैवहु की मानस मति हेरत॥

नन्दी हूँ करि कोप ठड़ो चितवत शिव पाहीं।
मनहुँ आज बाहू के रिस की सोभा नाहीं॥

पारवती दै ठेस पीठ नन्दी की ठाढ़ी।
चितवत गङ्गा दिसि धरकति छाती अति गाढ़ी॥

मनहुं वेग धारा में निज गति पुंज मिलावति।
वायु वेग प्रति छिन पाछे करि उतरति आवति॥

मुदित नैन, सिथिलित सुअङ्ग वर कलित वसन तन।
खलित केस अति ललित छटा छिटकति चहुं प्रतिछन॥

वह धावति आवति मुनि जन मानस हरषावत।
कै वाकी दिसि यह भूगोल गेंद सो धावत॥

कोटि कोटि घननादनि सो करि यह दिग कम्पित।
गिरी शम्भु की जटा मध्य गंगा करि झम्पित॥

घूमन लागी जटाजूट घन गहन मध्य वह।
चकित गर्व करि सर्व सकुच तन चमक नव्य यह॥

थरथराइ मन में सकाइ सिर नाय सोच तें।
बिनवन लागी शिवहिं शैल बाला सकोच तें॥

इत राजर्षि भगीरथ हूं बिनती अति कीन्हीं।
तब तजि कोप शम्भु गंगा की धारा दीन्हीं॥

दिव्य सुरथ पै चढ़े भगीरथ आगे धाये।
पाछे भागीरथी चली चित चोप चढ़ाये॥

गर्जति उफनति झूमति हहरात तट तोरति।
अनगिनतिन पद औत करति छिति ओरति॥

जह्नु ऋषी के आश्रम को जल प्लावन कीन्हो।
तब मुनि रिसि करि गंगधार सारी पी लीन्हो॥

पै जब बहुरि करी विनती राजा कर जोरे।
तब जाह्नवी धार काननि ते जन्हुहि छोरे॥

मिली धार वा सगर सुवन की राख्य बहाइ।
सागर मों मुरि कपिल मुनी के पग सिर नाई॥

ब्रह्मशाप ते छूटि गये सुरधाम सगरसुत।
जय गंगे जय गंगे यों कहि कहि तेहि विनवत॥

चन्द्रोदय

परमरम्य नीलाभ गगन तल पै यह को है?
चितवत हो चख चपल अचल करि जो मन मोहै।
अहै कहा यह राहु सीस को काटन हारो।
चमचमात चक्राई सुमन गन को रखवारो॥
किधौं शेष फन एक धरातल ऊपर आयो।
कै कोऊ मुनिवर को चमकत भाल सुहायो॥
किधौं विष्णु पद नख की कछुक छटा छवि छाजत।
कै कलिदजा मध्य रजतमय नौका राजत॥
यामें झलकत कहा श्यामता? सोऊ कहिए।
ठाढ़े करत सलाह मलाह चलन कित चहिए॥
कै रजनी को राजत है सुहाग फल पूरो।
किधौं सुधाधर उदित भयो है आजु अधूरो॥

कै धौं जनम्यों अबै जलधि उर तें यह बालक।
कै शशि शेखर भाल तिलक शैवन कुल पालक॥
गरल सहोदर की ज्वाला तें जरि उर माहीं।
शम्भु सीस हू चढ़ि या को नेकहुँ सुख नाहीं।
छुद्र जीवहू कहुँ ऊँचे आसन थिर होहीं?
याही तें यह भटकत डोलत है चहुँ कोहीं॥
सीतल करन हृदय सीतल मारुत चहुँ खोवत।
बिरहिन के मानस बरजोरी विष बहु बोवत॥

लाला भगवान दीन

कलावती

थी हिन्द की यह भूमि अजब वीर प्रसूती।
हो गुजरा हैं नारी भी जहाँ वीर अकूती॥
दुष्टों ने यहाँ खाई है अबलाओं की जूती।
है आज तलक उनकी बनी कीर्ति अछूती॥
पर अब तो अपुन्सत्व की है बोलती तूती।
अबलाओं की क्या, नर भी बने जाते हैं लूती॥१॥

इस हिन्द मे हो गुजरा हैं कुछ ऐसी भी नारी।
मर्दों की तरह युद्ध किये हैं बड़े भारी॥
दुश्मन की बड़ी फौज हैं निज हाथ से मारी।
रण-भूमि में जाकर नहीं पिछली हैं पिछारी॥
खाविन्द के गिरने से भी साहस नहीं छोड़ा।
निज देश के हित रण से कभी मुँह नहीं मोड़ा॥२॥

वीरत्व में, धीरत्व मैं, पति-प्रेम में आला।
इस हिन्द में हो गुजरी हैं लाखों ही सुबाला॥
उनमें से यहाँ एक का कुछ हाल निराला।
सुनने में जिसे होता है यों दिल में उजाला॥
ज्यों रात अंधेरी में निशा-नाथ की छाया।
भर पूर प्रकाशै हरै तमतोम की माया॥३॥

खिलजी था अलाउदीन जो दिल्ली का शाहंशाह।
हो मस्त रजोगुण में भुला दी थी सुगम राह॥
था चाहता वह हिन्द की सतियों से करे ब्याह।
था रूप का बैरी, न था पति-प्रेम का निर्वाह॥
चित्तौर की पद्मावती-हित धूल उड़ाई।
जलता ही रहा डाह से, पर खाक न पाई॥४॥

रजथान में था एक करणसिंह महावीर।
सन्तोष सहित भोगता इक छोटी सी जागीर॥
था न्याय में गम्भीर, बड़ा युद्ध में रण धीर।
रैयत भी उसे मानती थी जैसे गुरू-पीर॥
सहधर्मिणी थी उसकी कलावंती कहाती।
गुण-रूप का भण्डार थी, वीरत्व में माती॥५॥

चित्तौर में जब शाह को कुछ हाथ न आया।
मन मार के खुद आप तो दिल्ली को सिधाया॥
सेना के महावीरों को यह हुक्म लगाया।
"मन-माना करो हिन्दुओं के धन का सफाया॥
यदि लूट में मिल जाय कोई नारि भली सी।
पहुँचाना मेरे पास अछूती ही कली सी" ॥६॥

बहुतों ने सुना था, कि करणसिंह की नारी।
थी रूप में पद्मा से तनक यों ही पिछारी॥
जो फौज थकी थी, सो दिल्ली को सिधारी।
इक फौज के नायक ने यही बात बिचारी॥
"जाते तो हैं, कुछ चलते समय जोर दिखा लें।
लड़ जाय अगर भाग्य, तो कुछ हाथ लगा लें" ॥७॥

यह सोच करणसिंह की जागीर पै टूटा।
रैयत को सताया, किसी सरदार को कूटा॥
कुछ बाँधे, बहुत काटे, किसी वैश्य को लूटा।
तीतर के समूहों में हो ज्यों बाज सा छूटा॥
यों जेर-जबर करते करणसिंह ने सुन कर।
पठवाया सदेसा यही निज न्याय से गुनकर॥८॥

"जो कहना हो, मुझसे कहो, रैयत से न बोलो।
यह धर्म है वीरों का, इसे ध्यान में तोलो॥
जो गाँठ हो दिल में उसे वीरत्व से खोलो।
मद-मस्त अँधेरे में न यों राह टटोलो॥
जब मैं न करूँ आपका सम्मान यथायोग।
तब मेरी प्रजा पावै मेरे कर्म का यों भोग"॥९॥

यह सुन के संदेसा, कहा यवनेश ने ललकार।
"जा कह दे करण से, कि मुझे नारि है दरकार॥
या दै दे मुझे नारि, नहीं आके करैं रार।
देखी नहीं चित्तौर की क्या उसने विकट मार॥
बस, क्रोध से मेरे न करणसिंह बचैगा।
खायेगा बड़ी मार जो परपञ्च रचेगा"॥१०॥

यह बात सुन क्रोध करण का उमड़ आया।
'फौरन ही सजे सैन' यह हुक्म लगाया॥
अधरात को सरदारों को निज पास बुलाया।
'क्या चाहिये करना' यही बस प्रश्न सुनाया॥
"रानी तो नहीं दूँगा चहै राज्य हो बरबाद।
रैयत के सताने का चखाऊँगा उसे स्वाद"॥११॥

सरदार भी थे वीर, लगे कहने कि "महराज !
दम रहते तो हम होने नहीं देवेंगे यह काज ॥
यह तुर्क तो क्या, आवैं अगर आप ही यमराज ।
हम टूट पड़ें जैसे गिरे हाथी पे बनराज ॥
छत्री का परम धर्म है यह रण में करैं मार ।
बैरी को न दे अश्व तथा नारि व तलवार" ॥१२॥

होते ही सबेरा हुई सब फौज भी तैयार ।
रण बाजे से सज आ गये जागीर के सरदार ॥
बस, वीर करण ने भी सजे अङ्ग पै हथियार ।
उत्साह में चेहरे पे दमक आई चमकदार ॥
आँखों में विकट क्रोध की ज्वाला थी लपकती ।
यमराज की भी आँख जिसे देख झपकती ॥१३॥

सब छोड़ अलंकार, तजे वस्त्र जनाने ।
सैनिक का किया भेष, सजे युद्ध के बाने ॥
तलवार कड़ाबीन कसे ठीक ठिकाने ।
भाला व तबर-तीर लिये जहर के साने ॥
घोड़े पे चली संग करणसिंह के रानी ।
रण-भूमि में पति-सेवा की थी दिल से दिवानी ॥१४॥

दल दोनों जुड़े, होने लगी मार विकट की ।
वीरों को हुआ हर्ष, कुमति क्रूर की सटकी ॥
पाई जो कहीं घात, वहीं उस पे झपट की ।
बौछार पड़ी तीरों की तलवार भी खटकी ॥
भालों की सनासन में तबर बोले छपाछप ।
"ठाँ" बोली कड़ाबीन, वो खंजर ने कहा 'गप' ॥१५॥

लोथों पै गिरी लोथैं, बही खून की धारा।
तब वीर करणसिंह ने तुर्कों को प्रचारा॥
"क्यों हटते चले जाते हो, क्या दिल में विचारा?
बढ़ि आगे करो युद्ध में परितोष हमारा॥
हो वीर पुरुष, क्यों हटते चले जाते?
हम जानते ऐसा, तो कभी रण में न आते" ॥१६॥

ललकार सुने वीर यवन जोश में आये।
बढ़ बढ़ के करणसिंह पै हथियार चलाये॥
सब वार करणसिंह ने भर पूर बचाये।
यवनों के कई वीर भी रण-सेज सोवाये॥
इस तरह के घमसान में क्या किसको खबर थी?
सेना कहाँ सरदार कहाँ, नारि किधर थी? ॥१७॥

पर, वीर करणसिंह की पत्नी भी अजब था।
खाँड़े की लड़ाई में चतुर, धीर गजब थी॥
उसके ही सती भाव की करतूत ये सब थी।
हिम्मत ये भला वर्ना करणसिंह में कब थी?
दिल्लीश की सेना से भिड़े जोश दिखाकर।
कुछ करके दिखाते, उसे हथियार उठाकर॥१८॥

दब सट में पड़े वीर करण, घाव लगे चार।
घोड़े से गिरे भूमि में, बस हो गये बेकार॥
पत्नी ने जो निज आँखों से देखा ये समाचार।
बस क्रोध से जल भुन के वहीं हो गई अंगार
खाविन्द को उठवा के तुरत दूर पठाया।
ललकार के निज सेन को यह बोल सुनाया॥१९॥

"हाँ, वीरो! खबरदार न हिम्मत को हराना।
तज वीर के बाने को न बन जाना जनाना॥
क्षत्री का परम धर्म है रण खेल मचाना।
रण-भूमि में मरना है तुरत स्वर्ग में जाना॥
पीछे जो हटा उसको मैं दो खण्ड करूँगी।
आओ बढ़ो संग मेरे, मैं रण चण्ड करूँगी॥२३॥

यों कहके बढ़ी आगे, बड़े जोश में भरकर।
रानी पै निछावर किये सब वीरों ने निज सर॥
घोड़े पै चढ़ी जाती जिधर झट से चपरकर।
धर देती उधर सैकड़ों के शीश कतर कर॥
चण्डी सी बनी फिरती थी रण-भूमि में धाई।
फट जाती थी यवनों का सफै जैसे कि काई॥२१॥

इक हाथ तबर एक से तलवार घुमाती।
दाँतों में लिये बाग को थी अश्व चलाती॥
जाती थी लपक कर जहाँ सरदार को पाती।
बस एक झपाटे मे उसे मार गिराती॥
यों सात यवन-सेन के सरदार मिटाये।
तुर्कों की बड़ी फौज के यों होश उड़ाये॥२२॥

सरदारों के गिरते ही भगी फौज सराभर।
रानी की गजब मार से सब काँपे थराथर॥
उखड़े जो जमे पैर तो बस जय है बराबर।
"महरानी की जै" गूँज उठा सोर सरासर॥
रानी ने झपट शाही पताका भी छिनाई।
फिरने लगी रण-भूमि में रानी की दोहाई॥२३॥

यों वीर यवन-सन सभी मार भगाई।
उठवा के करणसिंह को निज धाम में लाई॥
बैदों को बुला घावों की जब जाँच कराई।
बैदों ने लखे घाव तो यह बात सुनाई॥
"जहरीले ही हथियारों के सब घाव हैं माता।
मालिक पै समझ पड़ता है, रूठे हैं विधाता॥२४॥

इन घावों के भरने की फकत एक ही दवा है।
कर सकता है वह कौन? यह सन्देह बड़ा है॥
उस युक्ति के करने में करैया की कजा है।
है कौन जो निज प्राण की रक्षा को न चाहै॥
इन घावों को चूसै कोई निज प्राण गँवावै।
सो राजा को यमराज के फन्दे से छोड़ावै" ॥२५॥

"पति-क्षेम के हित नारि जो निज प्राण चढ़ावै।
संसार में निज बंश की मर्याद बढ़ावै॥
आनन्द से बैकुण्ठ में सुख-चैन उड़ावै।
सम्मान-सहित अन्त में निज स्वामी को पावै॥
है बात ये सब कहते धर्म-शास्त्र हमारे।
इक रोज तो मरना ही है. टरता नहीं टारे॥२६॥

मर जायेंगे राजा तो मैं ही राँड़ रहूँगी।
इन प्राण-पियारे का विरह कैसे सहूँगी?
मैं प्रेम से 'प्राणेश' भला किसको कहूँगी?
वैधव्य में संसार का सुख कौन लहूँगी?
मरने से मेरे हानि न कछु राज्य की होगी।
पति मेरे तो हो जायँगे आनन्द के भोगी" ॥२७॥

यो सोच, लिये चूम सभी घाव करण के !
उद्योग किये रुचि से; पति-कष्ट-हरण के ॥
खुद ठान लिये ठाट सभी अपने मरण के ।
सिदके किये निज प्राण भी निज नाथ-चरण के ।
है नारि पति-प्राण ! तुझे धन्य सहस बार ।
इस 'दीन' के स्वीकार करौ कोटि नमस्कार ॥२८॥

"मेरे लिये रण करके बलो शत्रु भगाये ।
विष चूम के प्यारी ने मेरे प्राण बचाये ॥
मेरे हो लिये प्यारी ने निज प्राण गँवाये" ।
इक दास से राजा ने समाचार ये पाये ॥
"हा प्यारी !" कह पेट में ली हूल कटारी !
हे प्रेम ! है महिमा तेरी संसार में भारी ॥२९॥

यौं परस्पर का जो हर दिल में समावे ।
सुरलोक का आनन्द इसी लोक में आवै ॥
हर एक भवन इन्द्र के वैभव को लजावै ।
इक झोपड़ी नन्दन का सदा दृश्य दिखावै ॥
दम्पति के शुभ प्रेम से संसार का सुख है ।
बिन प्रेम के सम्पत्ति-विभव दुख-ही-दुख है ॥३०॥

जिस हिन्द में हो गुजरी है इस भाँति की नारी ।
दुश्मन से करें युद्ध, दिली प्रेम हो भारी ॥
उस हिन्द के पुरुषों की है किस हेतु य ख्वारी ?
दुश्मन के खखारे से डरें; फूट से यारी ॥
इन बातों को दिल देके जरा सोचो-बिचारो ।
तब देश-सुधारक बनो ऐ हिन्द के प्यारो ॥३१॥

—:o:—

फुटकर

(१)

सघन लतान सों लखात बरसात छटा,
सरद सोहात सेत फूलन की क्यारी में।
हिम ऋतु काल जल जाल के फुहारन में,
सिसिर लजात जात पाटल-कतारी में॥
सुरभित पौन से बसन्त सरसात नित,
ग्रीष्म लौं दुख दह सोखै चटकारी में।
'दीन' कवि सोभा षट् ऋतु की निहारी सदा,
जनक कुमारी की पियारी फुलवारी में॥

(२)

थोरे घास पानी में अघाती रहै रैन दिन,
दूध दही माखन मलाई देत खाने के।
पूतन तें खेती करवाय देत अन्न वस्त्र,
जाके हाड़ चाम आँत गोबर ठिकाने के॥
'दीन' कवि मेरे जान याही बात अनुमानि,
मुनिन महान धर्म मान्यो गो चराने के।
ऐसे उपकारी की कृतज्ञता बिसारि अब,
भारत निवासी मारे फिरैं दाने दाने के॥

देवी प्रसाद 'पूर्ण'

वर्षा वर्णन

(१)

चातक समूह बैठे बोलन को बाए मुख,
नाचन को मोर टाढ़े पाँव ही उठाए हैं;
'पूरन जी' पावस को आगम सुखद जानि,
आनन्द सों बालिन के हिए लहराए हैं।
द्रोही द्रुम जाति केरे! अरक जवास एरे!
तेरे जरिबे के अब द्योस नियराए हैं;
हीतल महीतल को सीतल करन हारे,
देखु कैसे प्यारे घन कारे घेरि आए हैं।

(२)

गाजैं मेघ कारे मोर कूकैं मतवारे, रटैं
पपी-वृंद न्यारे, जौर मारुत जनावती,
इन्द्र-चाप भ्राजै, बक-अवली विराजै छटा
दामिनि की छाजै भूमि हरत सुहावती।
'पूरन' सिंगार साजि सुन्दरी-समाज आज,
झूलती मनोहर मराल मंजु गावती;
चंद बिनु पावस में जानि के सुधा की हानि,
मानो चंद्रमंडली पियूष बरसावती।

(३)

झूमि-झूमि लोनी-लोनी लतिका लवंगन की,
भेटती तरुन सो पवन मिस पाय-पाय,
कामिनी सी दामिनी लगाए निज अंक तैसे,
साँवरे बलाहक रहें हैं नभ छाय-छाय,
घन स्याम प्यारी वृथा कीन्हों मान पावस में,
सुना तो पपीहा की रटन उर लाय-लाय,
पीतम मिलन अभिलासी बनिता-सी लखो,
सरिता सिधारी ओर सागर के धाय धाय।

(४)

अवली बकन की विमल दरसाए देत,
चहूँ ओर छाए देत घटा घनी काली है,
इंद्र को धनुस सतरंगी दरसाए देत,
धरा पर देत सरसाए हरियाली है।
पावस सुहायो निज आगम जनाए देत,
घाम के वहाए देत ग्रीषम बिहाली है।
मोरन के सोरन सो कानन रमाए देत,
झंझा की झकोरन झुमाए देत डाली है।

(५)

भाँति भाँति फूलन पै भूलन भ्रमर लागे,
कालिंदी के कूलन पै कुंजन अपारन में।

इंद्र की बधूटिन के वृंद दरसान लागे,
मोर सरसान लागे मोरन पुकारन में।
दामिनी छटा सों, घटा गाजन अछोर लागी,
राजनि हिलोर लागी सरिता की धारन में।
फूले बन फूले मन आनन्द भरन लागे,
झूले लागे परन कदम्बन की डारन में।

(६)

चपला चमकदार भूषन लसत भूरि
जुगनू मनिन जाल सोहै पोर-पोर है।
कालिमा तिमिर को संवारी स्याम सारी स्वच्छ,
अंगराग नीरद की सुखमा अथोर है।
'पूरन' पुरुस पै प्रकृति बाम पावस में,
मिलन चली हैं मैन मारुत की ओर है।
मोरन पुकार किंकिनी की धुनि मंजु होत,
झनकार झिल्लिन की झाँझन की सोर है।

(७)

आई बरसात की रसीली सुखदाई ऋतु,
दिल पै चहूँधा सरसात सुघराई है।
साजे बर बसन अभूषन अकल अंग,
झूलत हिंडोरे तरुनीन समुदाई है।
पेंग के भरत बिछुवान की मधुर धुनि,
सुनि सुनि 'पूरन' यों उपमा सुनाई है।

हंसन की अवली भुलाय के पुरानी चाल,
आज ऋतु पावस को दे रही बधाई है।

(८)

सागर है कुंड जारी नारियाँ नदीगन है,
क्यारियाँ सघन बन सुखमा निराली है।
बिहरैं अमित जंतु, बिबिध प्रतच्छ तैसे,
'पूरन' सुगन्ध हरि कीरति प्रनाली है,
जग है बगीचा श्रीरमावर है स्वामी तासु,
ऋतु दास गन की रहत रखवाली है।
चतुर सुरेस चेरे करत सिंचाई रहै,
देव चतुरानन प्रधान ताको माली है।

(९)

कीधौं मारतंड की प्रचंडता समन हेतु,
देवी धरनी ने आन सीतल पँवारे हैं।
कीधौं निज संपति को चोर सविता को जान,
करन बरुन ओर वाही के इसारे हैं।
कीधौं सियरायबे को 'पूरन' समीरन को,
प्रकृति कपूर-कन सघन उभारे हैं,
कीधौं घोर ग्रीष्म में तापित महीतल पै,
हीतल बुझावन को सीतल फुहारे हैं।

(१०)

धानी आसमानी सुलेमानी सुलतानी,
मूँगी संदली सिंदूरी सुख सौसनी सुहाए हैं,

कंजई कनैरी भूरे चंपई जगारी रूरे,
पिस्तई मंजीठी सुरमई घेरि आए हैं।
मासी नीलकंठी गुलाबासी सुखरासी तूसी,
कुसमी कपासी रंग 'पूरन' दिखाए हैं।
नारंजी पियाजी पोखराजी गुलनारी घने,
केसरी गुलाबी सुवापंखी मेघ छाए हैं।

गीता गुण-गान

(१)

भारत के पारथ को कृष्ण उपदेस्यो ज्ञान,
पावन सुखद सो रहस्य सब गावती।
नासिनी कुमोह कोह ममता मदादि दोष,
ब्रह्म ही अगाध ताकी थाह को लहावती।
छलकन जाके प्रति बचन में सांत रस,
मारग परम निरबान को बतावती।
गीता शांतिदायिनी मुमुच्छुन के श्रौनन में,
'पूरन' जू आनन्द पियूष बरसावती।

(२)

सोई भ्रम बात भूरि संकट करन हारो,
योनिन अनेक में जो बासना भ्रमावती,
आतप त्रैताप भूरि ममता जलाक पाप,
विषय विसूचिका त्रिकाल डरपावती।

जरत बृथा ही भव ग्रीसम बिषय दीन,
लहत न काहे जीव शांति मन भावती।
'पूरन' प्रसिद्ध घन श्याम की मधुर बानी,
गीता मेघमाला है पियूष सरसावती।

(३)

धर्म को बिसारि गति धारि कै तमीचर की,
तामस तिमिर में भ्रमत क्यों बिहाला है।
'पूरन' प्रकाशमान पावन परम ज्योति,
ध्याव रे अनारी जग जासों उजियाला है।
वासना प्रबल ते न पै है नत पार कै हूँ,
मेटि बुद्ध जीवन की देत सो कसाला है।
ग्रीसम प्रचंड घोर मारुत झकोर आगे,
जैसे ठहरात नाहि दीपन की माला है।

(४)

वासन प्रचंड पौन जीव ममतादि जामें,
भव की पयोनिधि अगाध बिकराला है;
तरन चहै तू क्षुद्र प्राणी तो रमेसो ध्याव,
ध्यान जलपान जाको 'पूरन' विशाला है।
खेवट उपासना सहारे पार लागन को,
सब में विशेष जो सुपास एक आला है।
माया की अंधेरी में कुपंथ की चटान पै हूँ,
गीता की प्रकाश मान दीपक की माला है।

(५)

भाव के निदाघ में जरत क्यों अनारी जीव,
पैहै सुख धर्म धाम सीतल सनातन में।
तीन ताप आतप तपत चित लावै क्यों न,
ध्यान सुख सेज छाई भक्ति कंज पातन में।
तृसना तृषा सो रहे आकुल वृथा ही मूढ़,
रीझ रस सीरे संत ग्रंथन पुरातन में।
लहु बिसराम खस खाने गुरु बातन में,
दुख क्यों सहत भ्रम घोर भ्रम बातन में।

(६)

भेद जीव ईश को बतावे सरसावे तान,
प्रीति जो करावै ब्रह्म 'पूरन' सनातन में।
प्रकृति की संज्ञा दरसावै कै विदित पंथ,
तत्त्व को प्रबंध जैान जीवन के गातन में।
सेत भवसागर को हेत परमानन्द की है,
पावन प्रसिद्ध जोई ग्रंथन पुरातन में।
पीजै सुधा संत रस मन को लगाव ताही,
भगवतगीता परमात्मा की बातन में।

जगन्नाथ दास रत्नाकर

कृष्ण-विरह

(१)

आये हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तौ पै,
ऊधौ ये वियोग के बचन बतरावौ ना।
कहै 'रतनाकर' दयाकरि दरस दीन्यौ,
दुख दरिबै कौं, तौ पै अधिक बढ़ावौना।
टूक टूक ह्वै है मन-मुकुर हमारौ हाय!
चूकि हूँ कठोर बैन पाहन चलावौ ना।
एक मन मोहन तौ बसिकै उजार्‌यौ मोहिं,
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना।

(२)

चुप रहौ ऊधौ सूधौ पथ मथुरा कौ गहौ,
कहौ ना कहानी जो बिबिध कहि आये हौ।
कहै 'रतनाकर' न बूझिहैं बुझायें हम,
करत उपाय वृथा भारी भरमाये हौ।
सरल सुभाव मृदु जानि परौ ऊपर तैं,
पर उर घाय करि लौन सौ लगाये हौ।
रावरी सुधाई मैं भरी है कुटिलाई कूटि,
बात की मिठाई मैं लुनाई लाइ ल्याये हौ।

(३)

नेम ब्रतसंजम के पींजरैं परै को जब,
लाज-कुल कानि प्रतिबन्धहिं निवारि चुकीं।
कौन गुन गौरव कौ लंगर लगावै जब,
सुधि बुधि ही कौ भार टेक करि टारि चुकीं।
जोग-'रतनाकर' मैं साँस घूँटि बूड़ै कौन,
ऊधौ हम सूधौ यह बानक बिचारि चुकीं।
मुक्ति-मुकता कौ मोल माल ही कहा है जब,
मोहन लला पै मन मानिक ही वारि चुकीं।

(४)

हम परतच्छ मैं प्रमान अनुमानै नाहिं,
तुम भ्रम भौंर मैं भलैही बहिबौ करौ।
कहै 'रतनाकर' गुबिन्द ध्यान धारैं हम,
तुम मनमानो ससा-सिंग गहिबौ करौ।
देखति सो मानति हैं सूधौ न्याव जानति हैं,
ऊधौ! तुम देखि हूं अदेख रहिबौ करौ।
लखि ब्रज-भूप-रूप अलख अरूप ब्रह्म,
हम ना कहैंगी तुम लाख कहिबौ करौ।

(५)

कर बिनु कैसें गाय दुहिहैं हमारी वह,
पद बिनु कैसें नाचि थिरकि रिझाइहैं।
कहै 'रतनाकर' बदन बिनु कैसें चाखि,
माखन, बजाइ बेनु गोधन गवाइहैं।

देखि सुनि कैसें दृग स्रवनि बिनाहीं हाय !
भोरे ब्रजबासिन की बिपति बराइहैं।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारें काम आइहै।

(६)

जोग को रमावै औ समाधि को जगावै इहाँ,
दुख-सुख-साधनि सौं निपट निवेरी हैं।
कहै रतनाकर न जानैं क्यौं इतै धौं आइ,
साँसनि की सासना की बासना बखेरी हैं।
हम जमराज की धरावति जमा न कछू,
सुरपति सम्पति की चाहति न ढेरी हैं।
चेरी हैं न ऊधौ ! काहू ब्रह्म के बबा की हम,
सूधौ कहे देति एक कान्ह की कमेरी हैं।

(७)

सरग न चाहैं अपवरग न चाहैं सुनौ,
भुक्ति मुक्ति दोऊ सौं बिरक्ति उर आनैं हम।
कहैं 'रतनाकर' तिहारे जोग-रोग माँहिं,
तन मन साँसनि की साँसति प्रमानैं हम।
एक ब्रजचन्द कृपा मन्द मुसकानि ही मैं,
लोक पर लोक कौ अनन्द जिय जानैं हम।
जाके या वियोग दुख हू मैं सुख ऐसौ कछू,
जाहि पाइ ब्रह्म-सुख हू मैं दुख मानैं हम।

(८)

ढोंग जात्यौ ढरकि परकि उर सोग जात्यौ,
जोग जात्यौ सरकि स-कम्प कँखियानि तैं।
कहै 'रतनाकर' न लेखते प्रपंच ऐठि,
बैठि धरा लेखते कहूँ धौं नखियानि तैं;
रहते अदेख नाहिं बेष वह देखत हूँ,
देखत हमारो जान मोर पंखियानि तैं;
ऊधौ ब्रह्म-ज्ञान को बखान करते ना नैंकु,
देख लेते कान्ह जौ हमारी अँखियानि तैं।

गङ्गावतरण

बचन-बद्ध त्रिपुरारि ताकि सन्नद्ध निहारत।
दियौ ढारि बिधि गंग-बारि मंगल उच्चारत॥

चली बिपुल-चल बेग-बलित आहति ब्रह्मद्रव।
भरति भुवन-भय-भारि मचावति अखिल उपद्रव॥

निकसि कमंडल तैं उमंडि नभ मंडल खंडति।
धाई धार अपार बेग सौं वायु बिहंडति॥

भयौ घोर अति शब्द धमक सौं त्रिभुवन तर्जे।
महामेघ मिलि मनहु एक संगहि सब गर्जे॥

भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके।
हरके बाहन रुकत नैकु नहिं बिधि हरि हर के॥

दिग्गज करि चिक्कारि नैन फेरत भय-थरके।
धुनि प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके॥

कढ़ि कढ़ि गृह सौं बिबुध बिबिध जाननि पर चढ़ि चढ़ि ।
पढ़ि पढ़ि मंगल पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि बढ़ि ॥

सुर सुन्दरी ससंक बंक दीरघ दृग कीने ।
लगीं मनावन सुकृत हाथ कानन पर दीने ॥

निज दरेर सों पौन पटल फारति फहरावति ।
सुर पुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति ॥

चली धार धुधकारि धरा दिसि काटति कावा ॥
सगर सुतन के पाप ताप पर बोलति धावा ॥

बिपुल बेग सौं कबहुँ उमगि आगे को धावति ।
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिं चलि आवति ॥

फटिकसिला के बर बिसाल मन बिस्मय बोहत ।
मनहु बिसद छद अनाधार अंबर मैं सोहत ॥

स्वाति घटा घहराति मुक्ति पानिप सौं पूरी ।
कैधौं आवति झुकति सुभ्र-आभा-रुचि रूरी ॥

मीन मकर जल व्यालनि की चल चिलक सुहाई ।
सो जनु चपला चमचमाति चंचल छबि छाई ॥

रुचिर रजतमय कै बितान तान्यौ अति बिस्तर ।
झिरति बूँद सो झिलमिलाति मोतिन की झालर ॥

ताके नीचैं राग रंग के ढंग जमाये ।
सुर बनितनि के बृन्द करत आनन्द बधाए ॥

बर बिमान गज बाजि चढ़े जो लखत देवगन ।
तिनके तमकत तेज दिव्य दमकत आभूषन ॥

प्रतिबिंबित जब होत परम प्रसरित प्रवाह पर ।
आनि परत चहुँ ओर उए बहु बिमल बिभाकर ॥

कबहुं सुधार अपार वेग नीचे कौं धावै।
हर हराति लहराति सहस योजन चलि आवै॥
मनु विधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत।
पुन्यखेत उतपन्न हीर की रासि उसावत॥

आवति गिरा हैं रतनाकर निवाजन कौं,
आनन्द तरंग अंग ठहरति आवै है।
हिय तमहाई सुभ सरद जुन्हाई सम,
गहन गुराई गात गहरति आवै है।
बर बरदाननि के विविध विधाननि के,
दान के उमंग धुजा फहरति आवै है।
लहरति आवै दृग कोरनि की कृपा की कानि,
मन्द मुसकानि छटा छहरति आवै है।

श्मशान-भूमि का वर्णन

कीन्हे कम्बल वसन तथा लीन्हे लाठी कर।
सत्यब्रती हरिचन्द हुते टहरत मरघट पर॥
कहत पुकारि पुकारि 'बिना कर कफन चुकाए।
करहि क्रिया जनि कोई देत हम सबहि जताए॥ १॥

कहुं सुलगति कोउ चिता कहूं कोउ जात बुझाई।
एक लगाई जात एक की राख बहाई॥
विविध रंग की उठत ज्वाल दुर्गन्धनि महकति।
कहुं चरबी सौं चटचटाति कहुं दह दह दहकति॥ २॥

कहुं फूंकन हित धर्यो मृतक तुरतहिं तहँ आयौ।
पर्यो अंग अधजर्यो कहूं कोऊ करसायौ॥

कहूं स्वान इक अस्थिखंड लै चाटि चिचोरत।
कहुं कारी महि काक ठोर सौं ठोकि टटोरत॥ ३॥
कहुं श्रृगाल कोउ मृतक अंग पर ताक लगावत।
कहुँ कोउ शव पर बैठि गिद्ध चट चांच चलावत॥
जहँ तहँ मज्जा माँस रुधिर लखि परत बगारे।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुं कहुं रतनारे॥ ४॥
हरहरात इक दिसि पीपर को पेड़ पुरातन।
लटकत जामैं घंट बने माटी के बासन॥
बरषा ऋतु के काज औरहू लगत भयानक।
सरिता बहति सबेग करारे गिरत अचानक॥ ५॥
ररत कहूं मण्डूक कहूं झिल्ली झनकारैं।
काक मण्डली कहूं अमंगल मन्त्र उचारैं॥
लखत भूप यह साज मनहिं मन करत गुनावन॥
"परयौ हाय! आजन्म कर्म यह करन अपावन॥" ६॥

रामचरित उपाध्याय

कली

बातें न मेरी भूल जाना, ध्यान रखना है कली।
सबका बदलता है जमाना, सच समझना है कली॥

जिस वृक्ष से उत्पन्न हो, जिस गोद में तुम हो पली।
जिस भाँत वे सम्पन्न हों, उस भाँति रहना है कली॥

ज्यों ज्यों अभी क्रम से बढ़ोगी, त्यों लगोगी तुम भली।
पर नेत्र पर सबके चढ़ोगी, धैर्य्य रखना है कली॥

मधु के लिये घेरे रहेंगे, मधुप रस-वश हो छली।
मतलब मधुर बहु विधि कहेंगे, तुम मचलना है कली॥

गाना सुना करके फँसाना, जानते हैं सब अली।
उनके प्रलोभन में न आना, दृग बचाना है कली॥

तोड़े न तुमको मूढ़ माली, देखकर भी बे-खिली।
करना न अपनी सून डाली, युक्ति रचना है कली॥

खाकर बसंती वायु भूपर, अगर न जाना मनचली।
चढ़ना कठिन है पुनः ऊपर, गिर चुकी जब है अली॥

दुर्लभ तुम्हें यदि देखकर, कोई कहें बातें जली।
स्वार्थी जगत को देखकर, मन में विहँसना है कली॥

सुर भी तुम्हें अपनायेंगे, यदि विधि तुम्हारा है बली।
पामर वृथा अकुलायँगे, यह देख लेना है कली॥

जिसने किया निज धर्म को, जग में वही फूली-फली।
तजना न सौरभ-धर्म को, नय-मर्म है यह हे कली॥

सम्पत्ति पर की आज तक, किसके नहीं मन में खली ?
तुम चाहना मत राज तक, गुण है मिला जब हे कली॥

सोचो तुम्हीं, किसकी घड़ी, जग में नहीं चढ़कर ढली ?
है रूप की महिमा बड़ी, मत गर्व करना हे कली॥

कोई कहेगा निर्दयी, कोई तुम्हें मद की डली।
कोई कहेगा सुख मयी, चुपचाप सुनना हे कली॥

हिलकर न खिल जाना कहीं, बिकना पड़ेगा हर गली।
जिसकी न मर्यादा रही, वह है अधमतम हे कली॥

जीवन पराये हाथ है, इस हेतु मत डरना कली।
जगदीश सब के साथ है, कर्तव्य निज करना कली॥

मेरे पिता

(१)

मम जन्म दाता कौन थे ?
विधिवत विधाता कौन थे ?
सर्वत्र त्राता कौन थे ?
मेरे पिता मेरे पिता॥

(२)

मुझको लिखाते कौन थे ?
मुझको पढ़ाते कौन थे ?
नय-पथ दिखाते कौन थे ?
मेरे पिता मेरे पिता॥

(३)

चिढ़ कर कभी थे मारते,
सस्मित कभी पुचकारते।
थे कौन तन, मन वारते ?
मेरे पिता, मेरे पिता ॥

(४)

मेले दिखाते तुम रहे,
मोदक खिलाते तुम रहे।
हँस कर हँसाते तुम रहे,
मेरे पिता, मेरे पिता।

(५)

तब क्रोध में भी प्रेम था,
वात्सल्य का दृढ़ नेम था।
तुम थे तभी तक क्षेम था,
मेरे पिता, मेरे पिता ॥

(६)

मुझ पर निछावर तुम रहे,
मेरे लिये दुख सुख सहे।
छोड़ा मुझे क्यों वे कहे,
मेरे पिता, मेरे पिता ॥

(७)

मुझको न थे तुम छोड़ते,
मुख थे न पल भर मोड़ते।

हिचके न नाता तोड़ते,
मेरे पिता, मेरे पिता ॥

(८)

तजकर मुझे नरलोक में,
क्यों जा बसे सुरलोक में !
लखिये पड़ा हूँ शोक में,
मेरे पिता, मेरे पिता ॥

(९)

रोता हूँ आते क्यों नही !
ढाढ़स दिलाते क्यों नही !
उर से लगाते क्यों नहीं !
मेरे पिता, मेरे पिता ॥

(१०)

सेवन तुम्हारा क्या किया ?
मैंने न कुछ बदला दिया।
हा जन्म ही निष्फल लिया,
मेरे पिता, मेरे पिता ॥

(११)

पहला न अब यह देश है,
इसका भयानक वेश है।
अति क्लेश है, सुख-लेश है,
मेरे पिता, मेरे पिता ॥

(१२)

मेरी विनय सुन लीजिए,
अविलम्ब दर्शन दीजिए ।
मम हृदय शीतल कीजिये,
मेरे पिता, मेरे पिता ॥

सत्यनारायण कविरत्न

प्रेम कली

मञ्जु मनोरम मधुर सरस सुठि रस कुसुमाकर।
'प्रेम' सब्द अति अद्भुत अमल अलौकिक आखर॥
करत रुचिर रचना विरंचि जिनकी सुखकारी—
भये होयँगे अवसि परम कृतकृत्य सुखारी॥ १ ॥

अगम अगाथ अपार सबद - मय पारावारा।
मनु मथि जग-हित सुधा-कलस बिधि सदय निकारा॥
बसीकरन मुदभरन ओघ-अघ-दरन सदा के।
अकथित अमित प्रभावपूर्ण मनु मन्तर बाँके॥ २ ॥

रस - रतनाकर प्रेम - रतन मन जबहिं समाये।
बनत लाज कुल खान काँच कर सों छिटकाये॥
मंजुल उर नभ होत प्रेम-मय मित्र प्रकासा।
बिलसत लखि नहिं परत नियम खद्योत बिकासा॥ ३ ॥

जा बस निरगुन निराकार अज अलख निरञ्जन।
बनत सगुन साकार करत निज जन - गन - रञ्जन॥
त्रिबिध ताप बहु बिथा भरयो जग लवन-समुद-सम।
तस उपर गत प्रेम मधुर जल-स्रोत अनूपम॥ ४ ॥

होत न सोभा कतहुं नेह सो सूने उर की।
स्वीकृत होइ न सनद कबहुं जो बिना मुहर की॥

बिबिध भावना-परिधि-केन्द्र बस एक प्रेम है।
मिलत जहाँ सब आय निरत सुठि एक नेम है॥ ५ ॥

त्रय तापित उर लहलहात नन्दन सम सुंदर—
प्रकृत बसुमती, जबै अधिबसत प्रेम पुरन्दर॥
निरत बिचारना जोग रुचिर उपदेस यही उर।
परमेश्वर मय प्रेम, प्रेममय नित परमेसुर॥ ६ ॥

प्रकृत तामरस लसत बिबिध रस थलनि मनोहर।
परि अनुपम छबि धरत भरत जब प्रेम सरोवर॥
अस्तु सकल संसार पदारथ जंह बहु दरसत।
बस्तु यही है जासों मन मन को आकरसत॥ ७ ॥

त्रिभुवन पावन परम मंजु भावन सनेह रस।
बिपुल भाँति के धरत आभरन स्वभावना बस॥
करन फूल, नथ, खौरि आदि जिमि रूपक जानौ।
सब में सुमिरन एक बरन मनहरन समानौ॥ ८ ॥

नेह बसत उर नसत सकल मल मोह बिताना।
पिघल जात पाषान जीय नव नीति समाना॥
करन प्रेम को बसीकरन अच्युत आराधन।
त्रहियत अबिघन अबसि सघन मोहसमय साधन॥ ९ ॥

भुवन बिदित अभिराम अचल निष्काम तासु गति।
प्रथित पुरातन प्रचुर पुन्य मय प्रिय प्रन कीरति।
बरु तनु सुन्दर सगुन सरल सब भाँति अनूनौ।
दीप-सिखा सम करत प्रकास न सनेह सूनौ॥ १० ॥

सहज सरल यह सुलभ सत्य नहिं दुरयो काहु सन।
फिर क्यों कवियनु कियो बिथामय याको बरनन॥

साँची कहनावति जाकैं, 'नहिं फटै बिवाई—
समझ सकत सो किमि प्रकार कहु पीर पराई' ॥ ११ ॥

जासों अभिमति मिलै अवसि चहियतु सों धारौ।
स्वयं मनुज निज भाग अभाग सँवारन हारौ॥
बरु जहाज डिगमिगे बात-बस बिचलन छिन को।
लखियत नित ध्रुव भास सुई उत्तर-दच्छिन कों॥ १२ ॥

प्रेम पुहुप उधरत प्रियतम रज रहस पराने।
मोद भरत आदरत न तिहि रस भेद सयाने।
नेह निकाई अप्रकटत रस महिमा अधिकाई।
जग जिय भाई कबियनु गुनियनु मुनियन भाई॥ १३ ॥

उठत भावना बिबिध अनूपम जिन रुचिराई।
को नर ऐसो अधम सकै जो तिन बिसराई॥
अमित राग अनुराग कला कविता मनमोहनि।
लहरि उठत स्वच्छन्द सुखद सुन्दर सुठि सोहनि॥ १४ ॥

कठिन लभ्य आनन्द कन्द इक ओर प्रेम पद।
अपर ओर अति सहज स्वार्थ मग मदमय दुखप्रद॥
खुलै जुगुल मग, चलौ चलावहु जहँ जिय भावै।
निज निज रुचि अनुसार जीव जग सुख दुख पावै॥ १५ ॥

चित्र बिचित्र पवित्र प्रेम प्रनकर मनभावन।
सुनत परम रस-ऐन बैन पपिया के पावन॥
तृन समूह नहिं गिरन सकल निज तन-मन धन है।
पूरन प्रेमी परमासय पपिया को प्रन है॥ १६ ॥

प्रेम प्रथा अनुकरन जोग थिरचित चातक की।
जिहि सुनि छाती परै न तन प्रवसन पातक की॥

कैसो जाकर अहा अटल अविचल अद्भुत प्रन।
भरे सरित सर समुद तऊ नित याँचत जो धन ॥ १७ ॥

भूरि उपल बरु परहि धूरि उड़ियत पाखन की।
तबहू निहचल चाह चित्त स्वाती चाखन की॥
पूरन प्रेमिनि मीन जगत जाकी रति जानी।
प्रान-हीन पै उर रस प्रीति न तासु सिरानी ॥ १८ ॥

बिसम बिसैलो जब रिस करि निज डाँकहि मारै—
परम कठिन सो कठिन सहज ही दारु बिदारै—
सो षट पद गदगद उर निरबिस सरस सदाही—
मुदित पदम मुख कढ़ि न सकै गुञ्जत तिहि माँही ॥ १९ ॥

निरख्यो प्रेम प्रभाव पूरि रह्यो जग जीवन में।
लगु जासों मन मन्द सुरस छकि छकि पीवन में ॥
यहो जगत में जनम धरन को सुन्दर फल है।
जा बिन जीवन धरम करम चतुरई विफल हैं ॥ २० ॥

"मैं-तै" सों मुख मोरि नेह निधि जब अस पावै।
को नर ऐसो उदासीन जौ नहिं हुलसावै?
यदि कोउ चाहत निरमल नेह रसायन पारो—
बिरह पाप सों जात चपल चित पारद मारो ॥ २१ ॥

श्रम औ निज कर्त्तव्य धार मृदु मंगल देनी—
जब सनेह सरसुती मिलत तब बहत त्रिबेनी ॥
यही कसौटी विश्व माहिं जन-मनहि कसन की।
यह ही साँची बस्तु आत्मबल दैन असन की ॥ २२ ॥

जगत मनहिं बाँधन हित यह ही नरम शृंखला।
यही मदन-मोहन मोहन की सोहन सुकला ॥

यह आकरसनि-सकति भगति जो कोऊ धारै।
निज नैनन सों स्वय ब्रह्मपद - पदम निहारै ॥ २३ ॥

रस सरसावत छबि दरसावत हिय हरसावत।
बर बिनोद बरसावत प्रियतम पद परसावत॥
सुलभ सफलता - द्वार देस - सेवक गुनियनि को।
सुधाधार साहित्य मधु-ब्रत सत कबियन को॥ २४ ॥

अचला अवसि रतनगर्भा बसुमती सुहावति।
किन्तु प्रेम-रस रती धारि यह रसा कहावति॥
प्रीति रहस रस-रीति जगत जो उर न भरैगी।
तरसावत मन रसा रसातल गवन करैगी॥ २५ ॥

देखहु दै मन करि उमंग उपदेश असेसनि।
मनन करहु विद्वान-बिपुल उज्जल उपदेशनि॥
उलटा-पलटा करहु निखिल जग की सब भाषा।
मिलहि न परि कहुँ एक 'प्रेम' पूरी परिभाषा॥ २६ ॥

स्वयं सिखाय न सकै सारदा याकी पाटी।
परम बिलच्छन स्वच्छ प्रेम पूरित परिपाटी॥
गोपनीय रस रहै पुरातन प्रथा भली है।
याही सों अधखिली रही यह प्रेम-कली है॥ २७ ॥

वसन्त

सौख्य सुधा सरसाइये, सुभग सुलभ रसवन्त।
बर बिनोद दरसाइये, बसुधा बिपिन बसन्त॥ १ ॥
दस दिसि द्युति बरसाइये सजि सुरभित सुठि साज।
जग प्रिय हिय हरसाइये, रहि रसाल ऋतुराज॥ २ ॥

अमित अनारन अम्बन, अमल असोक अपार।
वकुल कदम्ब कदम्बन, पुनि पलास परिवार॥ ३॥

जहँ कोकिल कल बोलत, ठौर ठौर स्वच्छन्द।
गुञ्जत षटपद डोलत, पद पद पी मकरन्द॥ ४॥

जयति मधुरमन मोहन, जयति प्रकृति शृंगार।
सुन्दर सब विधि सोहन, कीजिय बिपुल बिहार॥ ५॥

नित नव निरमल निरखो, रमि सुरम्यता कुञ्ज।
पुनि पुनि प्रमुदित परखौ, पूरन प्रियता पुञ्ज॥ ६॥

मृदु मञ्जु रसाल मनोहर मंजरी, मोर पखा सिर पै लहरैं।
अलबेलि नवेलिन बेलिन में, नव जीवन ज्योति छटा छहरैं।
पिक भृंग सुगुञ्ज सोई मुरली, सरसों सुभ पीत पटा फहरैं।
रसवन्त विनोद अनन्त भरे, ब्रजराज बसन्त हिये बिहरैं॥

पद

माधव अब न अधिक तरसैयै।
जैसी करत सदा सो आये, वही दया दरसैये॥

मानि लेउ, हम क्रूर कुढंगी, कपटी कुटिल गँवार।
कैसे असरन-सरन कहा तुम, जन के तारनहार॥

तुम्हरे अछत तीन तेरह यह, देस दसा दरसावै।
पै तुमको यहि जनम धरे की, तनिकहु लाज न आवै॥

आरत तुम्हहिं पुकारत हम सब, सुनत न त्रिभुवन राई।
अँगुरी डारि कान में बैठे, धरि ऐसी निठुराई॥

अजहुँ प्रार्थना यही आप सों, अपनो बिरद सँवारौ।
'सत्य' दीन दुखियन की बिपता, आतुर आइ निवारौ॥

मन्नन द्विवेदी

मातृभूमि

(१)

जन्म दिया माता सा जिसने, किया सदा लालन पालन।
जिसके मिट्टी जल से ही है, रचा गया हम सब का तन ॥

गिरिवर गण रक्षा करते हैं, उच्च उठा के शृंग महान।
जिसके लता द्रुमादिक करते, हमको अपनी छाया दान ॥

माता केवल बाल काल में, निज अंकन में धरती है।
हम अशक्त जब तलक तभी तक, पालन पोषण करती है ॥

मातृ-भूमि करती है मेरा, लालन सदा मृत्यु पर्यन्त।
जिसके दया प्रवाहों का नहिं, होता सपने में हीं अन्त ॥

मर जाने पर कण देहों के, इसमें ही मिल जाते हैं।
हिन्दू जलते यवन इसाई, दफन इसी में पाते हैं ॥

ऐसी मातृ भूमि मेरी है, स्वर्ग लोक से भी प्यारी।
जिसके पद कमलों पर मेरा, तन मन धन सब बलिहारी ॥

(२)

उद्बोधन

हिमालय सर है उठाये ऊपर, बगल में झरना झलक रहा है।
उधर शरद के हैं मेघ छाये, इधर फटिक जल छलक रहा है ॥१॥

इधर घनाबन हराभरा है, उपल पै तरवर उगाया जिसने ;
अचम्भा इसमे है कौन प्यारे, पड़ा था भारत जगाया उसने ॥२॥

कभी हिमालय के शृंग चढ़ना, कभी उतरते हैं श्रम से थक के।
थकन मिटाता है मजु झरना, बटोही छाये में बैठ थक के ॥३॥

कृशोदरी-गन कहीं चली है, लिये है बोझा छुटी है बेनी।
निकल के बहती है चन्द्रमुख से पसीना बनकर छटा की श्रेनी ॥४॥

गगन समीपी हिमाद्रि शिखरों, घरों में जलती है दीप माला।
यही अमरपुर उधर है सुरगा, इधर रसीली है देवबाला ॥ ५ ॥

गिरीश भारत का द्वारपर है, सदा से है यह हमारा संगी।
नृपति भगीरथ की पुण्यधारा, बगल में बहती हमारी गङ्गी ॥ ६ ॥

बता दे गंगा कहाँ गया है, प्रताप पौरुष विभव हमारा ?
कहाँ युधिष्ठिर, कहाँ है अर्जुन. कहाँ है भारत का कृष्ण प्यारा ॥ ७ ॥

सिखा दे ऐसा उपाय मोहन, रहैं न भाई पृथक हमारे।
सिखा दे गीता की कर्मशिक्षा, बजा के वंशी सुना दे प्यारे ॥ ८ ॥

अंधेरा फैला है घर में माधो, हमारा दीपक जला दे प्यारे।
दिवाला देखो हुआ हमारा, दिवाली फिर भी दिखा दे प्यारे ॥ ९ ॥

हमारे भारत के नव निहालो, प्रभुत्व वैभव विकाश धारे।
सुहृद हमारे हमारे प्रियवर, हमारी माता के चख के तारे ॥१०॥

न अब भी आलस में पड़ के बैठो, दशो दिशा में प्रभा है छाई।
उठो अंधेरा मिटा है प्यारे, बहुत दिनों पर दिवाली आई ॥११॥

लोचनप्रसाद पाण्डेय

मृगो दुख मोचन

(१)

बन एक बड़ा ही मनोहर था, रमणीयता का शुचि आकर सा।
सुख शान्ति के साज से पूरा सजा, वह सोहता था कुसुमाकर सा॥
शुभ सात्विक भाव की लीलास्थली, कुछ प्राप्त उसे था अहो! वर सा।
रहती थी वहाँ मृग दम्पति एक, बिचार के कानन को घर सा॥

(२)

रहती वहाँ शाल रसाल तमाल के, पादपों की अति छाया घनी।
चर के तृण आते थके वहाँ बैठते, ये मृग और उसकी घरनी॥
पगुराते हुए दृग मूँदे हुये, वे मिटाते थकावट थे अपनी।
खुर से कभी कान खुजाते कहीं, सिर सींग पै धारते थे टहनी॥

(३)

कुछ काल अनन्तर ईश कृपा वश, प्राप्त हुई उन्हे सन्तति दो।
गही दम्पति-प्रेम-प्रशस्त की धार ने, एक को छोड़ नई गति दो॥
अब दो बिधि के अनुराग जगे, पगे वे सुख में सुकृति अति हो।
इस जीवन का फल मानों मिला, खिला प्रेम-प्रसून सुसंगति हो॥

(४)

दिन एक लिए युग शावकों को, चरने को अकेली मृगी गई थी।
वह चारु बसन्त का काल रहा, बन शोभा निराली विभामई थी॥
शुचि शैशव चंचलता वशतः, मृगछौनों की लीला नई नई थी।
भरते बहु भाँति की चौकड़ियाँ, उनकी द्रुति दौड़ कहीं हुई थी॥

(५)

वह तीनों जने निज नित्य के स्थान से, दूर अनेक चले गये थे।
बन था वह नूतन ही उनको, सब दृश्य वहाँ के नये नये थे॥
तटिनी-तटकी छवि न्यारी ही थी, लता-कुञ्ज के ठाट भले ठये थे।
बहती थी सुगन्धित वायु अहा, तृण कोमल खूब वहाँ छये थे॥

(६)

चरने लगे वे सुख साथ वहाँ, भय का न उन्हें कुछ भावना थी।
यहाँ होगा बहेलिया पास कहीं, इसकी न उन्हें कभी कल्पना थी॥
पर दैव-विधान विचित्र बड़ा, उसकी कुछ और ही योजना थी।
पहुँचा वहाँ व्याध कराल महा, जिसको कि अहेर की चिंतना थी॥

(७)

लख बच्चों के साथ मृगी को वहाँ, झट घेर उन्हें चहुँ ओर लिया।
उनके बिना जाने बिछा दिये जाल यों, पार्श्व का मारग रोक दिया॥
लगा आग ही पीछे हुआ फिर आगे लिये धनुवाण कठोर हिया।
उस व्याध ने छोड़ दिये फिर श्वान, धरो धरो का फिर शोर किया॥

(८)

सहसा इस ओर विपत्ति से ही, कर्तव्य विमूढ़ मृगी अकुलानी।
नव मास के गर्भ के भार से थीं, वह यों ही स्वभाव ही से अलसानी॥
फिर साथ में थे मृदु शावक दो, सुकुमारता की जिनकी न थी सानी।
चहुँ ओर को देखती बोली वहाँ, वह कातर हो यह आरत बानी॥

(९)

दिशा उत्तर दक्षिण में लगे जाल, फँसे उस ओर भगे जो कभी।
यह दावा कराल है पूर्व की ओर, गये उस ओर हो भस्म अभी॥
करता हुआ शोर शिकारी खड़ा, पथ पश्चिम ओर के रोक सभी।
हम बंदी हुये चहुँ ओर से हा! मिटता क्या कपाल का लेखन भी॥

(१०)

तृण कोमल पत्तियाँ शाक वनस्पतियाँ वन में फिरते चरते।
पर-पीड़न हिंसा तथा अपकार, कदापि किसी की नहीं करते॥
हम भीरु स्वभाव ही से हैं हरे! न कठोरता, भीषणता धरते।
छल-छिद्र-विहीन हैं भोले निरे, फिर भी हैं यहाँ हम यों मरते॥

(११)

रहती मैं अकेली तो क्या भय था, मुझे सोच न था तनु का अपने।
पर साथ में लाड़ले जीवन मूर, ये छौने दुलारे हैं दोनों जने॥
फिर गर्भ में बालक है सुकुमार, इसी से मुझे दुख होते घने।
हम चारों का अन्त यों होगा हरे, यह जाना न था मन में हमने॥

(१२)

अब क्या करूँ दीन के बन्धु हरे! किसका मुझे बाकी भरोसा रहा।
पथ है चहुँ ओर से मेरा घिरा, गिरा चाहता काल का चक्र महा॥
यह पावक वेग से उग्र हुआ, इसी ओर बढ़ा चला आता रहा।
जिसकी खर ज्वाल से नन्हें अहो, इन छौनों का है तन जाता दहा॥

(१३)

अरिश्वान ये तीर से आते चले, इसी ओर को है अब खैर नहीं।
बढ़ता हुआ व्याध भी आ रहा है, बस अन्त है तीर जो छोड़ा कहीं॥
करते हम यों न विलाप प्रभो, मृग प्यारा हमारा जो होता यहीं।
कहते हुये यों रुक कंठ गया, चुप हो मृगी हो गई स्तब्ध वहीं॥

करुणा वरुणालय श्री हरि की, इतने में हुई कुछ ऐसी दया ।
घन-घोष के साथ गिरी बिजली, जिससे कि शिकारी अचेत भया ।।
सब श्वान भगे बनके गजों से, वह जाल समूह भी तोड़ा गया ।
बरसा जल मूसरधार बुझी, बन दावा मिला उन्हें जन्म नया ।।

(१५)

यहाँ तीनों हुये अति बिस्मित से, लखि श्री हरि की यह लीला अहा ।
अति मूक हुये ये कृतज्ञता से, घर जा रहे थे गहे मोद महा ।।
वहाँ देख विलम्ब को व्यग्र हुआ, मृग ढूँढ़ने को इन्हें आता रहा ।
सुख सीमा नहीं थी मिले जब चारों, मृगी के सुनेत्र से आँसू बहा ।।

(१६)

मधु सूदन माधव की दया से, हम रोग की ज्वाला मिटाते रहें ।
भव बंधन से हम बद्ध न हो, करि कर्म से धर्म कराते रहें ।।
दुख श्वान से आकुल प्राण न हों, हम स्वास्थ्य-सुधा नित पाते रहें ।
कलिकाल शिकारी के लक्ष्य न हों, यश श्रीहरि का नित गाते रहें ।।

रामचन्द्र शुक्ल

कुमार की चिन्ता

कह्यो नृप एक बसन्त के बासर "वत्स, चलौ पुर बाहर आज,
जहाँ सुखमा सरसानि घनी, धरती अपनो धन खोलि अनाज।
बिछावत काटनहार समीप; चलौ अपनौ यह देखन राज,
भरैं नृप के नित कोषहि जो, चल आवत पालत लोक समाज।"

चढ़े रथ पै दोउ जात चले, बन बाग तड़ाग लसैं चहुँ ओर।
लसे नवपल्लव सों लहरैं लहि के तरु मन्द समीर-झकोर,
कहूँ नव किंशुक-जाल सों लाल लखात घने बन खण्ड के छोर।
परैं जहँ खेत सुनात तहाँ श्रमलीन किसानन को कल रोर।
लिये ग्वारिहानन में सुथरे पथ पार पयार के ढूह लखात।
मढ़े नव मञ्जुल मौरन सों सहकार न अंगन माहि समात,
भरी छवि सो छलकाय रहे, मृदु सौरभ लै बगरावत बात
चरैं बहु ढोर कछारन में जहँ गावत ग्वाल नचावत गात।
लदे कलियान औ फूलन सों कचनार रहे कहुँ डार नवाय।
भरो जहँ नीर धरा रस भीजि कै दीनी है दूब की गोट चढ़ाय।
रह्यो कल गान विहंगन को अति मोद भरो चहुँ ओर सों आय।
कढ़ै लघु जन्तु अनेक, भगै, पुनि वास की झाड़िन को झहराय।
डोलत है बहु भृङ्ग पतङ्ग सरी सुप मंगल मोद मनाय।
भागत झाड़िन सों कढ़ि तीतर पास कहूँ कछु आहट पाय।
बागन के फल पै कहुँ कीर हैं भागत चोंच चलाय चलाय।

धावत है धरिबे हित कीटन चाष घनी चित चाह चढ़ाय।
कूकि उठै कबहूँ कल कण्ठ।सो कोकिल कानन में रस नाय।
गीधि गिरै छित पै कछु देखत, चील रहीं नभ में मँड़राय।
श्यामल रेख धरे तन पै इत सों उत दौरि कै जाति गिलाय।
निर्मल ताल के तीर कहूँ बक बैठे हैं मीन पै ध्यान लगाय।
चित्रित मन्दिर पै चढ़ि मोर रह्यो निज चित्रित पङ्ख दिखाय।
ब्याह के बाजन बाजन की धुनि दूरि के गाँव में देति सुनाय।
वस्तुन सों सब शान्ति समृद्धि रही बहु रूपन मे दरसाय।
देखि इतो सुख-साज कुमार रह्यो हिय में अति हाँ हरखाय।

सूक्ष्म रूप सों पै वाने कीनो विचार जब,
देखे जीवन कुसुम बीच कारे कराटक तब—

कैसो दीन किसान पसीनो अपनो गारत।
केवल जीवन हेतु कठिन श्रम करत न हारत।

गोदि लकुट सों दीर्घ बिलोचन बैलन हाँकत।
जरत घाम में रहत धूरि खेतन की फाँकत।

देख्यो फेरि कुमार खात दादुर पतंग गहि;
सर्प ताहि भखि जात, मोर सों बचत मर्प नहि।

श्यामा पकरत कीट, बाज झपटत श्यामा पर;
चाहा पकरत मीन, ताहि धरि खाय जात नर।

यों इक बधिकहिं बधत एक बधिजात आप पुनि;
मरण एक को दूजे को जीवन, देख्यो गुनि।

जीबे की धुनि माहिं जगत के जीव मरत लरि:
लखि यह सब सिद्धार्थ कुँवर बोल्यो उसास भरि—

"लोक कहा यह सोइ लगत जो परम सुहावन,
अवलोकन हित जाहि परयो मोकों ह्याँ आवन!

सबल निबल को समर चलत जल थल में ऐसो।
है तटस्थ टुक धरौं ध्यान, देखौं जग कैसो।"

आमंत्रण

छग के प्रतिरूप सरोज हमारे उन्हें जग ज्योति जगाती जहाँ;
जल बीच कलंब-करंबित कूल से दूर छटा छहराती जहाँ;
घन अंजन वर्ण खड़े तृण जाल की झाईं पड़ी दरसाती जहाँ;
बिखरे बक के निखरे सित पंख बिलोक बकी बिक जाती जहाँ;

द्रुम-अंकित, दूब-भरी, जल-खंड-जड़ी धरती छवि छाती जहाँ,
हर हीरक-हेम-मरक्त, प्रभा, ढल चन्द्र कला है चढ़ाती जहाँ,
हँसती मृदु मूर्ति कलाधर की कुमुदों के कलाप खिलाती जहाँ;
घन चित्रित अंबर अंक धरे सुषमा सरसी सरसाती जहाँ;

निधि खोल किसानों के धूल-सने श्रम का फल भूमि बिछाती जहाँ;
चुन के, कुछ चोंच चला करके चिड़िया निज भाग बँटाती जहाँ;
कगरों पर काँस की फैली हुई धवली अवली लहराती जहाँ;
मिल गोपों की टोली कछार के बीच है जाती औ गाय चराती जहाँ;

जननी धरणी निज अंक लिये बहु कीट पतंग खेलाती जहाँ;
ममता से भरी हरी बाँह की छाँह पसार के नीड़ बसाती जहाँ;
मृदु वाणी, मनोहर वर्ण अनेक लगाकर पंख उड़ाती जहाँ;
उजली कँकरीली गली में धँसी तनु धार लटी बलखाती जहाँ;

दल राशि उठी खरे आतप में हिल चंचल चौंध मचाती जहाँ;
उस एक हरे रँग में हलकी गहरी लहरी पड़ जाती जहाँ;
कल कर्बुरता नभ की प्रतिबिम्बित खंजन में मन भाती जहाँ;
कविता, वह हाथ उठाये, हुए चलिए कवि वृन्द बुलाती वहाँ;

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

भक्त की अभिलाषा

(१)

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ,
तू है महासागर अगम मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूँद समान हूँ।
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ॥

(२)

तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूँ,
तू है अगर दक्षिण पवन तो मैं कुसुम की धूल हूँ।
तू है सरोवर अमल तो मैं एक उसका मीन हूँ,
तू है पिता तो पुत्र मैं तव अंक में आसीन हूँ॥

(३)

तू अगर सर्वाधार है तो एक मैं आधेय हूँ,
आश्रय मुझे है एक तेरा, श्रेय या आश्रेय हूँ।
तू है अगर सर्वेश तो मैं एक तेरा दास हूँ,
तुझको नहीं मैं भूलता हूँ दूर हूँ या पास हूँ॥

(४)

तू है पतित पावन प्रगट तो मैं पतित मशहूर हूँ,
छल से तुझे यदि है घृणा, तो मैं कपट से दूर हूँ।

है भक्तिकी यदि भूख तुझको, तो मुझे तव भक्ति है,
अति प्रेम है तेरे पदों में, प्रेम है आसक्ति है ॥

(५)

तू है दया का सिन्धु तो मैं भी दया का पात्र हूँ,
करुणेश तू है, चाहता मैं नाथ करुणा-पात्र हूँ ।
तू दीन बन्धु प्रसिद्ध है मैं दीन से भी दीन हूँ,
तू नाथ ! नाथ अनाथ का, असहाय मैं प्रभु-हीन हूँ ॥

(६)

तव चरण अशरण-शरण हैं, मुझको शरण की चाह है,
तू शीतकर है दग्ध तो मेरे हृदय में दाह है ।
तू है शरद राकाशशी, मम चित्त चारु चकोर है,
तव ओर तजकर देखता वह, और की कब ओर है ॥

(७)

हृदयेश अब तेरे लिये, है हृदय व्याकुल हो रहा,
आ आ इधर आ शीघ्र आ, यह शोर यह गुल हो रहा ।
यह चित्त चातक है तृषित, कर शान्त करुणा वारि से,
घन श्याम तेरी रट लगी आठों पहर है अब इसे ॥

(८)

तू जानता मन की दशा रखता न तुझसे बीच हूँ,
जो कुछ कि हूँ तेरा किया हूँ उच्च हूँ या नीच हूँ ।
अपना मुझे अपना समझ तपना न अब मुझको पड़े,
तजकर तुझे यह दास जाकर द्वार अब किसके अड़े ॥

(६)

तू है दिवाकर तो कमल मैं, जलद तू मैं मोर हूँ,
सब भावनायें छोड़कर अब कर रहा यह शोर हूँ।
मुझमें समा जा इस तरह तन प्राण का जो तौर है,
जिसमें न फिर कोई कहे मैं और हूँ तू और है॥

साहसी पथिक

चक्रव्यूह सा रच कर पथ में काँटे जाल बिछाये हैं,
टपकाते हैं राल भेड़िये खाने को मुँह बाये हैं,
घोर नाद करते हैं नाले, नद विस्तार बढ़ाये हैं,
गिरवर खड़े अकड़ते से हैं, भौंहें विकट चढ़ाये हैं,

पर साहसी पथिक निर्भय हो,
अपने पथ पर जाता है।

आँधी आती कभी कभी तूफान भयानक आते हैं,
जिससे विचलित होते प्राणी तन थर थर थर्राते हैं,
घिर-घिर कर घन गरज बिज्जु असि पल-पल पर चमकाते हैं,
आँखों के सम्मुख आ-आ कर प्रलयकाल मच जाते हैं,

पर साहसी पथिक निज मन में,
जरा नहीं घबड़ाता है।

काल नेमि से बंचक मग में आते हैं बहकाने को,
आते विषम विचार प्रेत बन-बन के हैं डरवाने को,
वानर बिकट बराह तेंदुए तकते हैं धर खाने को,
बढ़ा रही हैं हाथ झाड़ियाँ झंझट में उलझाने को,

पर साहसी पथिक यह बातें,
कब निज मन में लाता है!

थकते हैं पद अगर उन्हें भी निज मन से बल देता है;
बस अपने ही भुज विक्रम से अपनी नौका खेता है;
पीछे हटने का न नाम वह कभी भूल से लेता है,
परम साहसी वीरकर्म्मवीरों का भी वह नेता है,
जाता पहुँच मुदित मंजिल पर,
सुयश-स्वर्ण सुख पाता है।

मैथिली-शरण गुप्त

साकेत वर्णन

देख लो साकेत नगरी है यहीं,
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही!
केतु-पट अंचल-सदृश हैं उड़ रहे,
कनक-कलशों पर अमर-दृग जुड़ रहे।
सोहती हैं विविध-शालाएँ बड़ी,
छत उठाये भित्तियां चित्रित खड़ी।
गेहियों के चारु चरितों की लड़ी,
छोड़ती है छाप, जो उन पर पड़ी!
स्वच्छ, सुन्दर और विस्तृत घर बने,
इन्द्र धनुषाकार तोरण हैं तने।
देव दम्पति अट्ट देख सराहते,
उतर कर विश्राम करना चाहते।
फूल-फलकर, फैल कर जो हैं बढ़ी,
दीर्घ छज्जों पर विविध बेलें चढ़ीं।
पौर कन्याएँ प्रसून-स्तूप कर,
वृष्टि करती हैं यहीं से भूप पर।
फूल-पत्ते हैं गवाक्षों में कढ़े,
प्रकृति से ही वे गये मानों गढ़े।

दामिनी भीतर दमकती है कभी,
चन्द्र की माला चमकती है कभी।
सर्वदा स्वच्छन्द छज्जों के तले,
प्रेम के आदर्श पारावत पले।
केश-रचना के सहायक हैं शिखी,
चित्र में मानो अयोध्या है लिखी?
स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ,
किन्तु सुरसरिता कहा, सरयू कहाँ?
वह मरों को मात्र पार उतारती,
यह यहीं से जीवितों को तारती।
एक तरु के विविध सुमनों-से खिले,
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट, उद्योगी सभी,
बाह्य भोगी, आन्तरिक योगी सभी।
व्याधि की बाधा नहीं तन के लिए,
आधि की शंका नहीं मन के लिए।
चोर की चिन्ता नहीं धन के लिए।
सर्व सुख हैं प्राप्त जीवन के लिए।
एक भी आँगन नहीं ऐसा यहाँ,
शिशु न करते हों कलित-क्रीड़ा जहाँ।
कौन है ऐसा अभागा गृह कहो,
साथ जिसके अश्व-गोशाला न हो?
धान्य-धन-परिपूर्ण सब के धाम हैं,
रंगशाला-से सजे अभिराम हैं।

लक्ष्मण की उर्मिला से भेंट

फड़क रहा है वाम नेत्र, उच्छ्वसित हृदय है,
अब भी क्या तन्वंगि, तुम्हें संशय या भय है?
"आओ, आओ, तनिक तुम्हें सिंगार सजाऊं,
बरसों की मैं कसक मिटाऊं बलि बलि जाऊं।'

"हाय! सखी, शृंगार? मुझे अब भी सोहेंगे?
क्या वस्त्रालंकार मात्र से वे मोहेंगे,
नहीं, नहीं प्राणेश मुझी से छले न जावें,
जैसी हूँ मैं, नाथ मुझे वैसा ही पावें।

शूर्पणखा मैं नहीं—हाय, तू तो रोती है!
अरी, हृदय की प्रीति हृदय पर ही होती है?
'किन्तु देख यह वेश दुखी होंगे वे कितने?"
तो, ला भूषण-वसन, इष्ट हो तुझको जितने।

पर यौवन - उन्माद कहाँ से लाऊंगी मैं?
वह खोया धन आज कहाँ सखि, पाऊंगी मैं?"

अपराधी-सा आज वही तो आने को है,
बरसों का यह दैन्य सदा को जाने को है,

कल रोती थी आज मान करने बैठी हो,
कौन राग यह, जिसे गान करने बैठी हो?

रवि को पाकर पुनः पद्मिनी खिल जाती है,
पर वह हिमकण बिना कहाँ शोभा पाती है?"
"तो क्या आँसू नहीं सखी, अब इन आंखों में?
फूटें, पानी न हो बड़ी भी जिन आँखों में!"

"प्रीति-स्वाति का पिया शुक्ति बन बनकर पानी,
राजहंसिनी, चुनो रीति - मुक्ता अब रानी!"
"विरह रुदन में गया, मिलन में भी मैं रोऊं,
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, पद रज धोऊं।

जब थी तब थी आलि, उर्मिला उनकी रानी,
वह बरसो की बात आज हो गई पुरानी!
अब तो केवल रहूँ सदा स्वामी की दासी,
मैं शासन की नहीं, आज सेवा की प्यासी।

युवती हो या आलि, उर्मिला बाला तन से,
नहीं जानती किन्तु स्वयं, क्या है वह मन से!
देखूं, कह, प्रत्यक्ष आज अपने सपने को,
या सज बज कर आप दिखाऊं मैं अपने को?

सखि यथेष्ठ है यही धुली धोती ही मुझको,
लज्जा उनके हाथ, व्यर्थ चिन्ता है तुझको!

उछल रहा यह हृदय अंक में भर ले आली,
निरख तनिक तू आज ढीठ सन्ध्या की लाली!
मान करूंगी आज? मान के दिन तो बीते,
फिर भी पूरे हुये सभी मेरे मन चीते।

टपक रही यह कुंज-शिला वाली शेफाली,
जा नीचे, दो चार फूल चुन, ले आ डाली!
बनवासी के लिए सुमन की भेंट भली वह!'
किन्तु उसे तो कभी पा चुका प्रिये, अली वह!

देखा प्रिय को चौंक प्रिया ने, सखी किधर थी?
पैरों पड़ती हुई उर्मिला हाथों पर थी।

मातृ-भूमि

नीलाम्बर परिधान हरित पटपर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडल है,
बन्दीजन खग-वृन्द, शेष-फन सिंहासन है।

करते अभिषेक पयोद हैं,
बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि, तू सत्य ही,
सगुण मूर्ति सर्वेश की।

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल - मन्द - सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है।
षड्ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है,
हरियाली का फर्श नहीं मखमल से कम है।

शुचि सुधा सींचता रात में
तुझ पर चन्द्र प्रकाश है,
हे मातृभूमि, दिन में तरणि
करता तम का नाश है।

सुरभित, सुन्दर, सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं,
भाँति भाँति के सरस, सुधोपम फल मिलते हैं।
औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातुवर रत्नावाली।

जो आवश्यक होते हमें,
मिलते सभी पदार्थ हैं।

हे मातृभूमि, वसुधा धरा,
तेरे नाम यथार्थ हैं।

आते ही उपकार याद है माता तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेरा।
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें,
मन होता है, तुझे उठाकर शीश चढ़ावें।

वह शक्ति कहाँ हा! क्या करें
क्यों हमको लज्जा न हो?
हम मातृभूमि, केवल तुझे,
शीष झुका सकते अहो!

राहुल-जननी

चेरी भी वह आज कहाँ कल था जो रानी;
दानी प्रभु ने दिया उसे क्यों मन यह मानी?
अबला-जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध और आँखों में पानी!

मेरा शिशु-संसार वह
दूध पिये, परिपुष्ट हो,
पानी के ही पात्र तुम,
प्रभो रुष्ट या तुष्ट हो।

महोबे की शोभा

एक एक रत्न धरे बैठी है वसुन्धरा,
एक एक अंचल में, अतुल अमूल्य जो;

देश देश की है एक अपनी विशेषता।
केन्द्र है प्रदेश वह मानों आर्य्य देश का॥
नर - मुनि - देव सर्व अन्न वहाँ होते है,
साथ ही उपजते हैं रत्न - राज हीरे भी।
वन है वहाँ के उपवन-से प्रकृति के,
और पुर-ग्राम पुरुषार्थ - से पुरुष के!
चर्चा भला फूलों की, फलों की क्या चलाऊँ मैं
कठिन बखान है वहाँ के पान पत्तों का।
कायर भी वीर बन जायँ बीड़ा लेने को!
पानी नहीं, मानों मान पीते वहाँ मानी हैं।
झेल सकता है कौन उष्णता भी उनकी?
दुर्लभ है दूसरों को वैसी चारु चन्द्रिका,
औरों से अधिक रविचन्द्र भी हैं उनके।
ऋतुएँ हैं और वहाँ उत्सव हैं उनके;
पर्व हैं परम्परा के गर्व उन्हें उनका।
पशुओं में पशुता, मनुष्यों में मनुष्यता,
किन्तु विहगों में तो विचित्रता ही है वहाँ।
उर्वर वहाँ का उर क्षेत्र भी अपूर्व है;
पूर्ण वायु - मण्डल है गीतों से, कवित्वों से;
वेदना भी केसर की कटुता - सी उनकी।
रीति, नीति, प्रीति वहाँ प्रभु की प्रतीति है;
किन्तु अकर्मण्यता नहीं है भाग्य रोने की।
पर्वत दिये हैं उन्हें उनकी धारित्री ने,
गढ़ दृढ़ दुर्ग दिये उसको उन्होंने है,

उपमा न पाकर बने हैं उपमान जो।
मन्दिरों में दर्शन हों चाहे जिस मूर्ति के,
प्रथम प्रतिष्ठा वहाँ होती कला की ही!
खोदकर शिल्पियों ने हृदय निकाले हैं,
कौशलों के; विस्फुरण, दृष्टि हो तो देख लो।
उथले नहीं हैं गुणग्राही कूप गहरे;
सागर के सार-भाग-सदृश तड़ाग हैं?
नदियाँ वहाँ की अहा! लीक आप अपनी,
रोक नहीं पाये हैं पहाड़ आड़े जिनको।
प्रस्तर-पटों पर तरंग-रंग रेखाएँ
खींचती हैं अक्षय-विचित्र-चित्र कब से!
एक बूँद भी उस चँदेल-खंड की सुधा
दिव्य कर सकती है भव्य भाव-सृष्टि को।
चित्रकूट पर ही पड़ी थी दृष्टि राम की,
त्यागा था उन्होंने जब अपनी अयोध्या को।

शुभ कामना

(१)

मानस-भवन में आर्य्यजन जिसकी उतारें आरती—
भगवान! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।
हो भद्रभावोद्भाविनी वह भारती हे भगवते!
सीतापते! सीतापते!! गीतामते! गीतामते!!

(२)

सब की नसों में पूर्वजों का पुण्य रक्त-प्रवाह हो,
गुण, शील, साहस, बल तथा सब में भरा उत्साह हो।

सब के हृदय में सर्वदा समवेदना की दाह हो,
हमको तुम्हारी चाह हो, तुमको हमारी चाह हो ॥

(३)

विद्या, कला कौशल्य में सब का अटल अनुराग हो,
उद्योग का उन्माद हो, आलस्य-अघ का त्याग हो।
सुख और दुख में एक-सा सब भाइयों का भाग हो,
अन्तःकरण में गूंजता राष्ट्रीयता का राग हो ॥

(४)

कठिनाइयों के मध्य अध्यवसाय का उन्मेख हो,
जीवन सरल हो, तन सबल हो, मन विमल सविशेष हो।
छूटे कदापि न सत्य-पथ निज देश हो कि विदेश हो,
अखिलेश का आदेश हो जो बस वही उद्देश्य हो ॥

(५)

आत्मावलम्बन ही हमारी मनुजता का मर्म हो,
षड्रिपु-समर के हित सतत चारित्र्यरूपी वर्म्म हो।
भीतर अलौकिक भाव हो बाहर जगत का कर्म्म हो,
प्रभु भक्ति, पर-हित और निश्चल नीति ही ध्रुव धर्म्म हो ॥

(६)

उपलक्ष के पीछे कभी विगलित न जीवन-लक्ष हो,
जब तक रहें ये प्राण तन में पुण्य का ही पक्ष हो।
कर्त्तव्य एक न एक पावन नित्य नेत्र-समक्ष हो,
सम्पत्ति और विपत्ति में विचलित कदापि न वक्ष हो ॥

(७)

उस वेद के उपदेश का सर्वत्र ही प्रस्ताव हो,
सौहार्द और मतैक्य हो, अविरुद्ध मन का भाव हो।
सब इष्ट फल पावें परस्पर प्रेम रखकर सर्वथा,
निज यज्ञ-भाग समानता से देव लेते हैं यथा॥

माखन लाल चतुर्वेदी

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर
हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं, देवों के शिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक!

झरना

कितने निर्जन में दीखा, रे मुक्त हार वाणी के।
कवि, मञ्जुल वाणी धारा, मा जननी कल्याणी के॥
किस निर्झरणी के धन हो ? पथ भूले हो किस घर का ?
है कौन वेदना बोलो ! कारण क्या करुणा स्वर का ?

मेरी वाणी की कटुता धो डाल तरल तारों से,
मैं तुझसा पागल हो के बह उठूँ नयन द्वारों से।

चढ़कर, गिरकर फिर उठकर, कहता तू अमर कहानी।
गिरि के अंचल में करता कूजित कल्याणी वाणी॥

इस ध्वनि पर प्रतिध्वनि करती रह रहकर पर्वत माला।
यह गुफा गीत गाती है ओढ़े नव हरा दुशाला॥

बेजाना नाद सुनाता जानासा जी में पाता।
अवनी तल क्या, हीतल में तू शीतल धूम मचाता॥

क्या तूने ही नारद को सिखलाया ता ना ना ना।
क्या तुझ से ही माधव ने सीखा था मुरली बजाना॥

क्या मेरे गीत मधुर हैं? पड़ गया तुम्हारा पानी!
ऊँचे नीचे टीलों में मैंने कब कही कहानी!

पाषाणों से लड़कर भी, ठडक कब मैंने जानी?
कब जी का मल धो पाया मेरी आँखों का पानी!

कब अमित पा सके मुझ में, शीतल तुषार की आग।
मैंने प्रियतम के रुख पर गिर कब उठकर पथ माग॥

कब मेरी बूँदें मेरे हैं तट हरयाले होते?
कब ग्वाले मुझमें आके, अपने पावों को धोते?

मैं गीत साम में गुथ कब, हर आठ पहर गाता हूँ!
कब रवि शशि का ममता से स्वागत मैं कर पाता हूँ!

मैं भू मण्डल को कृति से हूँ कुंभी पाक बनाता।
तू स्वर्गंगा बन करके सुरलोक यहाँ पर लाता॥

लय मेरी प्रलय न करती तरुणों के हिये उतर के।
तू कल कल कहला लेता पंछी दल पागल करके॥

मेरी गरीब करुणा पर 'वे' मस्तक डोल न पाते।
तेरी गति पर ।तरु तृण हैं, अपनी फुनगियाँ हिलाते॥

मैं पथ के अवरोधों से, पथ भूला रुक जाता हूँ।
भारी प्रवाह होकर भी विषयों में चुक जाता हूँ॥

पर तेरे पथ को रोकें जिस दिन काली चट्टानें।
साथी तरुलता भले ही तुझको लग जायँ मनानें॥

तब भी तू जरा ठहर कर सीकर संग्रह कर अपने।
चट्टानों के मंसूबे चढ़-चढ़ कर देता सपने॥

तू हृदय बेध बज्रों के, ले अपनी सेना शीतल।
प्रियतम प्रदेश चल देता, भर श्याम भाव से हीतल॥

मै उपकारी के प्रति भी ममता बारूद बनाता।
हूँ अपनी कुटी जलाता, उसके घर आग लगाता॥

तू 'मित्र-प्रमत्त' करों से ग्रीषम में प्राण सुखाता।
पर उसका स्वागत गाकर, किरणों पर अर्घ्य चढ़ाता॥

मेरे गीतो के प्यारे ! बूंदे न सूखने पाती।
विस्मृति पथ जोहा करतीं अपना शृंगार बनातीं॥

पर पंछी दल ने तेरे गीतो का गान किया है।
हरि ने तेरी वाणी को अमरत्व प्रदान किया है॥

क्या जाने तरु-पंखेरू तुझको लख क्यो जीते हैं?
तेरा कल कल पीते हैं, या तेरा जल पीते हैं?

अपने पंखो से किसने नभ छेदन इन्हें सिखाया?
आकाश लोक का किसने इनको गंधर्व बनाया?

श्यामल घन! श्वासों जैसी बांसुरी न दिखलाती है।
पर तेरे गीतों की धुन, स्वच्छन्द सुनी जाती है॥

ये छोटे छोटे तरुवर रह रह तालें देते हैं।
तुझसे प्रसाद में प्यारे, ठंढे मोती लेते हैं॥
कितने प्यारे तरु फूले, कलियों का मुकुट लगाये।
पर तेरी गोदी में हैं, वे अपना शीश झुकाये॥
फूलों को श्याम! चढ़ाकर जब वे सुगन्ध देते हैं।
पत्ते पंखे बन मारुत, जब मन्द मन्द देते हैं॥
तू अपने पास न रखकर ज्यों का त्यों उन्हें बहाता।
लहरों में नचा नचा कर प्रियतम के घर ले जाता॥
बनमाली बन तरुओं में तुम भी खिलवाड़ मचाते।
गिरि शिखर, गोद लेने में तुम पर हैं होड़ लगाते॥
जब श्यामल घन आ जावें तुझ पर जीवन ढुलकाते।
हँस हँस कर इन्द्र धनुष का वे मुकुट तुझे पहिनाते॥
मानों वे गले लिपट के कहते उपकार अमित हैं।
सांवले तुम्हारी करुणा, बस तुमको ही अर्पित है॥

जयशङ्कर प्रसाद

चिंता

"ओ चिन्ता की पहली रेखा,
अरी विश्व-वन की व्याली।
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कम्प सी मतवाली ॥१॥

हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल रेखा।
हरी-भरी-सी-दौड़-धूप, ओ
जल-माया की चल-रेखा ॥२॥

इस ग्रह कक्षा की हलचल! री
तरल गरल की लघु लहरी।
जरा मरण जीवन की, और न—
कुछ सुनने वाली, बहरी ॥३॥

अरी व्याधि की सूत्र-धारिणी,
अरी आधि, मधुमय अभिशाप।
हृदय-गगन में धूम-केतु सी,
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप ॥४॥

मनन करावेगी तू कितना,
उस निश्चिंत जाति का जीव।
अमर मरेगा क्या ? तू कितनी,
गहरी डाल रही है नींव ॥५॥

आह ! घिरेगी हृदय लहलहे,
खेतों पर करका-घन, सी।
छिपी रहेगी अंतरतम में,
सब के तू निगूढ़ धन सी ॥ ६ ॥

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिंता,
तेरे हैं कितने नाम ?
अरी पाप है तू, जा, चल जा
यहाँ नहीं तेरा कुछ काम ॥ ७ ॥

विस्मृति आ, अवसाद घेर ले,
नीरवते ! बस चुप कर दे।
चेतनता चल जा, जड़ता से,
आज शून्य मेरा भर दे ॥ ८ ॥

व्यथा

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई ॥
इस करुणा कलित हृदय में, क्यों विकल रागिनी बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में, वेदना असीम गरजती ॥
क्यों व्यथित व्योम गंगा-सी, छिटका कर दोनों छोरें।
चेतना तरंगिनि मेरी, लेती है मधुर हिलोरें ॥
अभिलाषाओं की करवट, फिर सुप्त व्यथा का जगना।
सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का लगना ॥

जीवन की जटिल समस्या, क्यों बढ़ी जटा-सी कैसी।
उड़ती है धूल हृदय में, किसकी विभूति है ऐसी॥

झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला॥

शशि मुख पर घूंघट डाले, अंचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में, कौतूहल से तुम आये॥

हृदय का सौन्दर्य्य

नदी की विस्तृत बेला शान्त,
अरुण मण्डल का स्वर्ण विलास:
निशा का नीरव चन्द्र विनोद,
कुसुम का हंसते हुए विकास।
एक से एक मनोहर दृश्य,
प्रकृति की क्रीड़ा के सब छन्द.
सृष्टि में सब कुछ है अभिराम,
सभी में है उन्नति या ह्रास।
बना लो अपना हृदय प्रशान्त,
तनिक तब देखो वह सौन्दर्य्य।
चन्द्रिका से उज्ज्वल आलोक,
मल्लिका-सा मोहन मृदु हास,
अरुण हो सकल विश्व अनुराग,
करुण हो निर्दय मानव चित्त,
उठे मधुलहरी मानस में,
कूल पर मलयज का हो वास।

भारतवर्ष

हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक-हार॥
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम पुञ्ज हुआ तब नाश, अखिल संसृति हो उठी अशोक॥

विमल वाणी ने वीणा ली, कमल-कोमल-कर में सप्रीत।
सप्तस्वर सप्तसिन्धु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम-सङ्गीत॥
बचाकर बीज रूप से सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत।
अरुण केतन लेकर निज हाथ, वरुण-पथ में हम बढ़े अभीत॥

सुना है दधीचि का वह त्याग, हमारी जातीयता विकास।
पुरन्दर ने पवि से है लिखा, अस्थि-युग का मेरे इतिहास॥
सिन्धु सा विस्तृत और अथाह, एक निर्वासित का उत्साह।
दे रही अभी दिखाई भग्न, मग्न वह रत्नाकर में राह॥

धर्म का ले-लेकर जो नाम, हुआ करती बलि, कर दी बन्द।
हमीं ने दिया शान्ति सन्देश, सुखी होते देकर आनन्द॥
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरापर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट, दया दिखलाते घर-घर घूम॥

यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि।
मिला था स्वर्णभूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि॥
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं॥

जातियों का उत्थान पतन, आँधियाँ, झड़ीं, प्रचण्ड समीर।
खड़े देखा, झेला हँसते, प्रलय में पले हुए हम वीर॥
चरित थे पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदासम्पन्न।
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न॥

हमारे सञ्चय में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव।
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव॥
वही है रक्त, वही है देश, वही है साहस, वैसा ज्ञान।
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य्य सन्तान॥

जियें तो सदा इसी के लिये, यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष॥

वरुणा की कछार

अरी वरुणा की शान्त कछार
तपस्वी के विराग की प्यार!

सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुञ्ज।
जगत नश्वरता के लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुञ्ज॥
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।
स्वर्ग की वसुधा से शुचि सधि, गूंजता था जिसमें संसार॥

अरी वरुणा की शान्ति कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार।

तुम्हारी कुञ्जों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद।
देवताओं के प्रादुर्भाव, स्वर्ग के स्वप्नों के सम्वाद।

स्निग्ध तरु की छाया में बैठ, परिषदें करती थीं सुविचार—
भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार ?

अरी वरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

छोड़ कर पार्थिव भोग विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार।
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव-सुलभ दुलार।
दुःख का करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार।
सुनाने आरण्यक सम्वाद, तथागत आया तेरे द्वार।

अरी वरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

मुक्ति जल की वह शीतल बाढ़, जगत की ज्वाला करती शान्त।
तिमिर का हरने को दुख भार, तेज अभिलाष अलौकिक कांत।
देव-कर से पीड़ित विक्षुब्ध, प्राणियों से कह उठा पुकार।
तोड़ सकते हो तुम भव बन्ध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार।

अरी वरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार।
दुःख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार।
विश्व-मानवता का जय घोष, यहीं पर हुआ जलद-स्वर-मन्द्र।
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रविचन्द्र।

अरी वरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

तुम्हारा वह अभिनन्दन दिव्य, और उस यश का बिमल प्रचार ।
सकल वसुधा को दे संदेश, धन्य होता है बारम्बार ।
आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी ध्वंसों में वह झंकार ।
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगन्त, विश्ववाणी का बने विहार ।

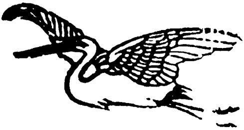

गोपाल शरण सिंह

ब्रज वर्णन

आते जो यहाँ हैं ब्रज-भूमि की छटा वे देख,
नेक न अघाते होते मोद-मद-माते हैं।
जिस ओर जाते उस ओर मन भाते दृश्य,
लोचन लुभाते और चित्त को चुराते हैं।
पल भर अपने को वे भूल जाते हैं सदा,
सुखद अतीत-सुधा-सिन्धु में समाते हैं।
जान पड़ता है उन्हें आज भी कन्हैया यहाँ,
मैया मैया टेरते हैं गैया को चराते हैं ॥ १ ॥

करते निवास छवि-धाम घन श्याम भृंग,
उर कलियों में सदा ब्रज-नर-नारी की।
कण कण में है यहाँ व्याप्त दृग सुखकारी,
मंजु मनोहारी मूर्ति जुगुल मुरारी की।
किसको नहीं है सुध आती अनायास यहाँ,
गोवर्धन देख कर गोवर्धन-धारी की?
न्यारी तीन लोक से है प्यारी जन्मभूम यही,
जन-मन हारी वृंदा विपिन विहारी की ॥ २ ॥

अंकित ब्रजेश की छटा है सब ठौर यहाँ,
लता द्रुम-वल्लियों में और फूल फूल में।

भूमि ही यहाँ की सब काल बतला-सी रही,
ग्वाल बाल संग वह लोटे इस धूलि में।
कल कल रूप में है वंशी रव गूंज रहा,
जाके सुनो कलित कलिंदजा के कूल में।
ग्राम ग्राम धाम धाम में हैं घनश्याम यहाँ,
किन्तु वे छिपे हैं मञ्जु मानस दुकूल में॥ ३॥

गूंज रही आज भी सभी के श्रवणों में यहाँ,
रुचिर रसाल ध्वनि नूपुरों के जाल की।
भूल सकता है कोई ब्रज में कभी क्या भला,
निपट निराली छटा चारु बनमाल की।
समता मराल ने न नेक कभी कर पाई,
मंजु मन्द मन्द नंद नन्दन की चाल की।
रहती दृगों में छाई उर में समाई सदा,
छवि मनभाई बाल मदन गोपाल की॥ ४॥

अब भी मुकुन्द रहते हैं ब्रज भूमि ही में,
देखते यहाँ के दृश्य दृग फेर फेर के।
छिपे उर कुञ्ज में हैं वृन्दाबन वासियों के।
थकते वृथा ही लोग उन्हें हेर हेर के।
चित्त वृत्तियाँ हैं सब गोपियाँ उन्हीं की बनी,
रहती उन्हीं के आस पास घेर घेर के।
आठों याम सब लोग लेते हैं उन्हीं का नाम,
मानों हैं बुलाते 'श्याम श्याम' टेर टेर के॥ ५॥

उमड़ रहा है प्रेम पारावार मानस में,
ब्रज बनिताएँ कैसे बैठी रहें मान में।

किस भाँति आज ब्रजराज से करें वे लाज,
रहता सदैव है समाया वह ध्यान में।
मन में बसी है मूर्ति उसी मन मोहन की,
हिचकें भला वे कैसे रूप रस पान में।
मृदु मुरली की तान प्राण में है गूंज रही।
कैसे न सुनेंगी उसे अँगुली दे कान में॥ ६॥

जिसने विपत्तियों से ब्रज को बचाया सदा,
दिव्य बल पौरुष दिखाया बालपन में।
मार क्रूर कंस को स्वदेश का छुड़ाया क्लेश,
सुयश - प्रकाश छिटकाया त्रिभुवन में।
सबको सदैव सिखलाया शुचि विश्व प्रेम,
गीता को बनाया उपजाया ज्ञान मन में।
दुख को हटाया सुख-बेलि को बढ़ाया वह,
श्याम मन भाया है समाया वृन्दावन में॥ ७॥

वही मंजु वही मही कलित कलिंदजा है,
ग्राम और धाम की विशेष छवि धाम है।
वही वृन्दावन है निकुंज-द्रुम-पुंज भी हैं,
ललित लताएँ लोल लोचनाभिराम हैं।
वही गिरि राज गोपजन का समाज वही,
वही सब साज बाज आज भी ललाम है।
ब्रज की छटा विलोक आता मन में है यही,
अब भी यहाँ का शुभ-नाम घनश्याम है॥ ८॥

देते हैं दिखाई सब दृश्य अभिराम यहाँ,
सुषमा सभी की सुध श्याम की दिलाती है।

फूलों फली सुरभित रुचिर द्रुमालियों से,
सुरभि उन्हीं की दिव्य देह की ही आती है।
सुयश उन्हीं का शुक सारिका सुनाती सदा,
कूक कूक कोकिला उन्हीं का गुण गाती है।
हरी भरी दृग-सुखदाई मन भाई मंजु,
यह ब्रज-मेदिनी उन्हीं की कहलाती है॥ ९॥

सुखद सजीली सस्य श्यामला यहाँ की भूमि,
श्याम के ही रंग में रंगी है प्रेम भाव से।
रज भी पुनीत हुई उनके चरण छूके,
शीश पर उसको चढ़ाते भक्ति भाव से।
ताप-पुंज-नाशी उर-कमल-विकासी हुआ,
यमुना सलिल बस उनके प्रभाव से।
कर दिया पूरा उसे वर वृंदावन ने ही,
जो थी कभी मेदिनी में स्वर्ग के अभाव से॥ १०॥

अचरज

मैंने कभी सोचा वह मंजुल मयंक में है,
देखता इसी से उसे चाव से चकोर है,
कभी यह ज्ञात हुआ वह जलधर में है,
नाचता निहार के उसी को मंजु मोर है;
कभी यह हुआ अनुमान वह फूल में है,
दौड़कर जाता भृंग-वृन्द जिस ओर है,
कैसा अचरज है, न मैंने जान पाया कभी,
मेरे चित में ही छिपा मेरा चित्त चोर है।

शिशु की दुनिया

माना सदा जाता रजनीश है खिलौना वहाँ,
बनता तमाशा वहाँ नित्य अंशुमाली है;
डाले हुए पैर का अँगूठा मुख में मनोज्ञ,
आता वहाँ याद शिशु-रूपी वनमाली है।

लाली अनुराग की सदैव रहती है वहाँ,
रखती उजाला वहाँ चन्द्र-मुखवाली है,
बनते मनुज हैं भी हाथी और घोड़ा वहाँ,
शिशु! सचमुच तेरी दुनिया निराली है।

छायी रहती है सदा सुख की घटा यों वहाँ,
होती कभी चित्त से न दूर हरियाली है;
चिन्ता, दुख, शोक वहाँ आने नहीं पाते कभी,
करती सदैव वहाँ माता रखवाली है।

मोह मद मत्सर का होता न प्रवेश वहाँ,
रहता न कोई वहाँ कपटी कुचाली है;
राजा है न कोई वहाँ, रानी है न कोई वहाँ,
शिशु! सब भाँति तेरी दुनिया निराली है।

उपालम्भ

दीन-दुखियों का जो सदैव है सहारा,
अब क्या हुआ तुम्हारा वह प्यारा प्रेम-भाव है!
मर्म-वेदना से भरी दीन की उसास का क्या,
नेक भी न तुम पर पड़ता प्रभाव है!

क्यों न दुखियों का दुख दूर करते हो शीघ्र,
कब से दया का हुआ तुममें अभाव है ?

बदल गया क्या नाथ ! सत्य ही तुम्हारा वह
कोमल, सरल, शान्त, सुखद स्वभाव है ?

दिन-रात घेरे रहती हैं दुख-चिंता हमें,
सोचो तुम्हीं क्या न हम सत्य हैं बखानते ?

कब अवकाश हमको है तुम्हें जानने का,
तुम्हीं बतलाओ हम कैसे तुम्हें जानते ?

नेक भी दया न कभी तुम हो दिखाते हमें,
किस भाँति दया धाम तुम्हें हम मानते ?

लेते सुधि तुम हम दीनों की कदापि नहीं,
कैसे दीन बन्धु हम तुम्हें पहचानते ?

सियाराम शरण गुप्त

देशगान

पुण्य भूमि यह हमें सर्वदा है सुखकारी,
माता के सम मातृभूमि है यही हमारी।
हमको ही क्या, सभी जगत को है यह प्यारी;
इतनी गुरुताई और कहीं क्या गई निहारी?
यह वसुधा सर्वोत्कृष्ट है क्यों न कहें हम फिर यही—
जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारतमही॥

"अब तक जो कुछ विश्व बीच हमने पाया है,
वह इस प्यारी पुण्य-भूमि की ही माया है।
हममें ओत-प्रोत प्रेम इसका छाया है।
हमने यह सब भाँति जगत को बतलाया है।
हम इसके सुत, हमको निरख कह उठते हैं सब यही—
जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारत मही॥

इसी भूमि पर राम-कृष्ण ने जन्म लिया है;
ऋषि मुनियों ने प्रथम ज्ञान-विस्तार किया है।
है क्या कोई देश यहाँ से जो न जिया है?
सद्रुप देश-पीयूष सभी ने यहाँ पिया है।
नर क्या, इसको अवलोक कर कहते हैं सुर भी यही—
जय जय भारत वासी कृती, जय जय जय भारतमही॥

हे ! हम सबकी मातृभूमि, भयहारिणि माता !
बस तेरा ही रूप हमें जी से है भाता।
तेरा-सा सौन्दर्य सृष्टि में दृष्टि न आता;
तेरी शोभा देख स्वर्ग भी है सकुचाता।
हम जिधर कान देते उधर सुन पड़ता हमको यही—
जय जय भारत वासी कृती, जय जय जय भारतमही।
"धरणी, सागर, शैल जहाँ तक गये निहारे,
हैं तेरे ही यशोगान से गुञ्जित सारे।
सभी देश हैं अतुलनीय तेरा ऋण धारे,
कीर्ति-धवल कर गये तुझे हैं पितर हमारे।
सब सुनें, गिरा यह गूंज कर है अनन्त में छा रही;—
जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारतमही॥

विदेह बापू

हे विदेह,
गेही भी सदैव तुम हो अगेह;
फेंक सकते हो तुम्हीं निर्विकार,
मृत्तिका - समान हेम - हीर - मणि - मुक्ताहार,
सतत अतुल हे,
जन्म जात उच्च स्वर्ग कुल के,
मर्त्य-कुल शाखा में हुये हो गोद
सप्रमोद;
भूतल की शुक्ति यह हलकी
एक बड़ी बूंद किसी पुण्य-स्वाति जल की

दुर्लभ सुयोग जन्य
प्राप्त कर तुममें हुई है धन्य धन्य धन्य ;
बाल तुम ?—बाल-युवा-वृद्ध नहीं कुछ भी ,
पूर्ण विश्व - मानव तभी , तभी ;
प्यार - प्रेम - श्रद्धा सह
बार बार प्रणत , प्रणाम तुम्हें अहरह !

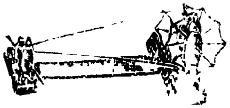

मुकुटधर पाण्डेय

कुररी के प्रति

(१)

बता मुझे ऐ विहग विदेशी ! अपने जी की बात ।
पिछड़ा था तू कहाँ, आ रहा जो कर इतनी रात ?
निद्रा में जा पड़े कभी के, ग्राम्य मनुज स्वच्छन्द ।
अन्य विहग भी निज खोतों में सोते हैं सानन्द ॥
इस नीरव-घटिका में उड़ता है तू चिन्तित गात ।
पिछड़ा था तू कहाँ हुई क्यों तुझको इतनी रात ॥

(२)

देख किसी माया-प्रान्तर का चित्रित चारु दुकूल,
क्या तेरा मन मोह-जाल में गया कहीं था भूल ?
क्या उसकी सौन्दर्य्य सुरा से उठा हृदय तब ऊब ?
या आशा की मरीचिका में छला गया तू खूब ?
या होकर दिग्भ्रान्त लिया था तूने पथ प्रतिकूल ?
किसी प्रलोभन में पड़ अथवा गया कहीं था भूल ?

(३)

अन्तरिक्ष में करता है तू क्यों अनवरत विलाप ?
ऐसी दारुण व्यथा तुझे क्या, है किसका परिताप ?

किसी गुप्त दुष्कृति की स्मृति क्या उठी हृदय में जाग ?
जला रही है तुझको अथवा प्रिय-वियोग की आग ?
शून्य गगन में कौन सुनेगा तेरा विपुल विलाप ?
बता कौन सी व्यथा तुझे है , है किसका परिताप ?

(४)

यह ज्योत्स्ना रजनी-हर सकती क्या तेरा न विषाद ?
या तुझको निज जन्म भूमि की सता रही है याद ?
विमल व्योम में टँगे मनोहर मणियो के ये दीप ;
इन्द्रजाल तू उन्हें समझकर जाता है न समीप ?
यह कैसा भयमय विभ्रम है कैसा यह उन्माद ?
नहीं ठहरता तू , आई क्या तुझे गेह की याद ?

(५)

कितनी दूर? कहाँ? किस दिशि में तेरा नित्य निवास ?
विहंग विदेशी आने का क्यों किया यहाँ आयास ?
वहाँ कौन तारागण करता है आलोक-प्रदान ?
गाती है तटिनी उस भू की बता कौन सामान ?
कैसी स्निग्ध समीर चल रही ? कैसा वहाँ सुवास ?
किया यहाँ आने का तूने कैसे यह आयास ?

विश्व-बोध

खोज में हुआ वृथा हैरान ।
यहाँ ही था तू हे भगवान !

गीता ने गुरु-ज्ञान बखाना , वेद पुरान जन्म भर छाना ,
दर्शन पढ़े , हुआ दीवाना , मिटा न पर अज्ञान ॥१॥

जोगी बन सिर जटा बढ़ाया, द्वार द्वार जा अलख जगाया;
जङ्गल में बहु काल बिताया, हुआ न तो भी ज्ञान ॥२॥
शैया से ज्यों उठकर आया, अन्वेषण में ध्यान लगाया;
पर तेरा कुछ पता न पाया, हुआ दिवस अवसान ॥३॥
अस्ता चल में हँस कर थोडा, सूरज से अपना मुख मोड़ा;
विहँगो ने भी मुझ पर छोड़ा, व्यंग्य - वचन का बाण ॥४॥
विधु ने नभ से किया इशारा, अधो दृष्टि करके ध्रुवतारा;
तेरा विश्व-रूप रस तारा, करता था नित पान ॥ ५ ॥
हुआ प्रकाश तमोमय मग में, मिला मुझे तू तत्क्षण जग में;
तेरा हुआ बोध पग पग में, मिटा सकल अज्ञान ॥ ६ ॥
मुक्तिधाम हरि के मन्दिर में, श्री गुरु के उपदेश रुचिर में;
जीवमात्र के हृदय-अजिर में, था तव वास स्थान ॥ ७ ॥
दीन-हीन के अश्रु-नीर में, पतितों की परिताप-पीर में;
सन्ध्या की चंचल समीर में, करता था तू गान ॥ ८ ॥
सरल स्वभाव कृषक के हल में, पतिव्रता रमणी के बल में;
श्रम-सीकर से सिञ्चित धन में, विषय मुक्त हरिजन के मन में,
कवि के सत्य पवित्र वचन में, तेरा मिला प्रमाण ॥ ९ ॥
पर-पीड़न से रहित धर्म में, ममता पूर्ण ममत्व मर्म में;
विष्णु-भक्ति के सुधापान में, भक्ति सहित हरि-भजन ध्यान में,
महिमा मय हरिनाम-गान में, था तव तत्व निदान ॥१०॥
देखा मैंने—यहीं मुक्ति थी, यहीं भोग था—यहीं भुक्ति थी,
घर में ही सब योग-युक्ति थी, घर ही था निर्वाण ॥११॥

श्री वियोगी हरि

शक्ति-स्तुति

शक्ति-शक्ति, शिव-शक्ति जय, जगत ज्योति, जगदम्ब !
आरत-भारत-आर्ति को, क्यों न हरति अविलम्ब ? ॥ १ ॥

त्रिभुवनेश्वरि, त्रय नयनि, जय, त्रिशूलिनी अम्ब ।
जन-त्रिताप-उपशमन में, क्यों अब करति बिलम्ब ॥ २ ॥

महिष-शूलिनी, शूलिनी, मौलि-मालिनी, त्राहि ।
जय जगदम्ब, कपालिनी, प्रणत-पालिनी, पाहि ॥ ३ ॥

प्रलय-हास जय कालिका, करति स्वभाव स्वछन्द ।
दहक-दंत-दुति-दमक ते, परत सूर्यशत मन्द ॥ ४ ॥

अट्टहास करि, धारि त्यों, मौलि-माल अविलम्ब ।
आदि नटी, शिव-सँग नटी, प्रलय-नाट्य जग-अम्ब ॥ ५ ॥

कर्षत रवि-रथ-चक्र जो, नित नभ ताण्डव माँह ।
रहौ, अम्ब ! जन-सीस पै, वहै बाँह की छाँह ॥ ६ ॥

या भारत-आरति हरौ, सोइ शक्ति द्रुत धाय ।
जासु प्रलय-पग परत हीं, शवहू शिव है जाय ॥ ७ ॥

कबको ठाढ्यौ पौरि पै, सुनत नाहिं कछु अम्ब ।
कहो, कहाँ तुव अंक तजि, सिसुहि आन अवलम्ब ? ॥ ८ ॥

निबलनु कों साँसत सबल, तुव देखत बसुयाम ।
कहा जानि, धार्‌यौ जननि, 'महिष-मर्दिनी' नाम ॥ ९ ॥

कलपि-कलपि भूखनि मरति, तुव संतति अभिराम।
कहा जानि, धार्‌यौ जननि! 'अन्नपूरणा' नाम ॥१०॥

पद्मिनीजौहर

वह चित्तौर की पद्मिनी, किमि पैहौ, सुलतान!
कब सिंहनि-अधरानु कौ, कियौ स्वान मधुपान? ॥ १ ॥

चंचरीक! चित्तौर में, नहिं पैहै रस-जाल।
ह्वै है चम्पक माल-लौं, तोहि पद्मिनी - बाल ॥ २ ॥

भई भस्म जहँ पद्मिनी, आरज - धर्म समोय।
यज्ञ अग्निहूँ ते अधिक, पावन पावक सोय ॥ ३ ॥

जादिन जौहर ते जगी, ज्वाल माल अति चण्ड।
जन-हीतल-सीतल करन, प्रगट्यौ जग श्री खण्ड ॥ ४ ॥

जेहि कारन सेवत सुरुचि, नित नवीन समसान।
जह तहँ जौहर की भसम, ढूंढ़त सम्भु सुजान ॥ ५ ॥

क्यो न धारिये सीस पै, वह जौहर की राख।
भव-तनु भूषन भसम ते, जो पुनीत गुन लाख ॥ ६ ॥

लिखे न केते सुमृति में, ब्रत विधान सविवेक।
पै जग जाहिर जङ्ग कौ, ब्रत जौहर बस एक ॥ ७ ॥

महाराणा साँगा

लसति जासु पवि देह पै, असी घाव की छाप।
सो साँगा निज साँग तें, दलै न काकौ दाप ॥ १ ॥

हे राणा साँगा! तुही, रण में मरद भलाह।
किते न खाँडि घाट तैं, दिय उतारि गुमराह ॥ २ ॥

जयमल और पत्ता

है जयमल राठौर ही, तुव सपूत चित्तौर।
भरत भरत तुव घाव जो, दिये प्राण तिहिं ठौर ॥ १ ॥

पत्ता-लौं अकबर अनी, पत्ता दई उड़ाय।
दिये फेरि चित्तौर पै, प्राण प्रसून चढ़ाय ॥ २ ॥

लाज आज मेवाड़ की, बस तुम्हरे ही हाथ।
जयमल ! पत्ता ! फूल लौं, हंसि चढ़ाइयौ माथ ॥ ३ ॥

जहँ जयमल- पत्ता वहीं, एक प्राण द्वै देह।
भयौ अमर मेवाड़ में, इन दोउन कौ नेह ॥ ४ ॥

महाराणा प्रताप

अणु-अणु पै मेवाड़ के, छपी तिहारी छाप;
तेरे प्रखर प्रताप तें, राणा प्रबल प्रताप ! ॥ १ ॥

जगत जाहि खोजत फिरैं, सो स्वतन्त्रता आप।
विकल तोहि हेरत अजौं, राणा निठुर प्रताप ! ॥ २ ॥

है, प्रताप ! मेवाड में, तुहीं समर्थ सनाथ।
धनि-धनि, तेरे हाथ ये, धनि-धनि तेरो माथ ॥ ३ ॥

रजपूतन की नाक तू, राणा प्रबल प्रताप !
है तेरी ही मूँछ की, राजथान में छाप ॥ ४ ॥

काँटे-लौं कसक्यौ सदा, को अकबर उर माँहिं।
छाँड़ि प्रताप-प्रताप जग, दूजो लखियतु नाहिं ॥ ५ ॥

जो प्रताप मेवाड़ के, यह कैसा तुव काम ?
खात खलनु तुव खड्ग पै, होत काल को नाम ॥ ६ ॥

खमंडि समुद्र-समुद्र-लौं, ठिले आप तें। आप।
करुण वीर-रस लौं मिले, सत्ता और प्रताप ॥ ७ ॥

फुटकर

गिरिवर जापै धारिकै, राखी ब्रज-जन लाज।
ताही छिंगुनी कौ हमैं, बल बानो यदुराज ॥ १ ॥

कोटिनु मधि केऊ कहूँ, कुल दीपक इक होतु।
नेह-सहित निज सीसु दै, दस दिसि करतु उदोतु ॥ २ ॥

जटा मुकुट सिर चाप कर कलित कलेवर श्याम।
दसमुख करि केहरि रमौ हगनि राम अभिराम ॥ ३ ॥

सिवा-सुजस-सरसिज-सुरस मधुकर मत्त अनन्य।
रस-भूषण-भूषण, सुकवि भूषण भूषण धन्य ॥ ४ ॥

सुभट-नयन अंगारु पै अचरजु एक लखातु।
ज्यौं-ज्यौं परतु उमाह-जलु, त्यौं-त्यौं धंधकत जातु ॥ ५ ॥

महल नाहि पगु धारिहौं रहिहौं कुटी छवाय।
हौं प्रताप जौ लौं न ध्वज दई फेरि फहराय ॥ ६ ॥

देखि ओरछा भौन ए बिमल बेतवै-तीर।
सुनि हरदौल-कथा अजौं मनु ह्वै जातु अधीर ॥ ७ ॥

झाँसी-दुर्गम-दुर्ग धनि महिमा अमित अनूप।
जहाँ चंचला अवतरी प्रकट चण्डिका रूप ॥ ८ ॥

यहि आल्हा-ऊदल लरे भिरे मरद मलखान।
यही महोबा-भूमि है उन बीरनु की खान ॥ ९ ॥

निज भाषा, निजभाव, निज असन-बसन निज चाल।
तजि परता, निजता गहूँ यह लिखियौ विधि भाल ॥ १०॥

चंचरीक! चित्तौर में नहि पैहै रस-जाल।
ह्वैहै चंपक-माल लौ तोहि पद्मिनी बाल ॥ ११॥
जय अकाल आनन्द भव नव मकरन्द मलिन्द।
शक्ति साधना सिद्धवर असि धर गुरु गोविन्द ॥ १२॥
तू अठौर राठौर-कुल भयौ ठसक कौ ठौर।
दुर्जय दुर्गादास! धनि धीर बीर सिरमौर ॥ १३॥
जय झाँसी गढ़ लच्छमी राजति त्रिबिध अनूप।
गति चपला, दुति चंद्रिका समर चण्डिका रूप ॥ १४॥
है ठाढ़े जा डार पै काटत सोइ मतिमन्द।
घर-घर भारत भाग तैं भरे भरि जयचन्द ॥ १५॥
अनाशक्ति सों जोरिये कार्य-कर्म अनुरक्ति।
ज्यौं ज्यौं करि आराधिये सुचित साधिये शक्ति ॥ १६॥
दीन दीन जानैं कहा सेइ राज दरबार।
उनकैं तौ आधार बस दीन बन्धु कौ द्वार ॥ १७॥
जाव भलै कुरुराज पै धारि दूत-बरबेस।
गइयौ भूलि न कहुँ वहाँ केसव द्रौपदी-केस ॥ १८॥
हृदय जीत सी जीत नहि, मरम भीति सी भीति।
धर्म नीति सी नीति नहिं, कृष्ण प्रीति सी प्रीति ॥ १९॥
क्षात्र धर्म, यश कौमुदी, कृष्ण रूप रुचि राग।
दोउ हरे! संगमु सदा यहै सुहागु प्रयाग ॥ २०॥

सूर्य्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

खँडहर के प्रति

खँडहर ! खड़े हो तुम आज भी ?
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज !
विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें—
करुणाकर, करुणामय गीत सदा गाते हुए ?

पवन—सञ्चरण के साथ ही
परिमल-पराग-सम अतीत की विभूति-रज—
आशीर्वाद पुरुष-पुरातन का
भेजते सब देशों में,
क्या है उद्देश तब ?
बन्धन-विहीन भव !
ढीले करते हो भव-बन्धन नर-नारियों के ?
अथवा,
हो मलते कलेजा पड़े, जरा—जीर्ण,

निर्निमेष नयनों से
बाट जोहते हो तुम मृत्यु की
अपनी सन्तानों से बूँद भर पानी को तरसते हुये ?

किम्वा, हे यशोराशि !
कहते हो आँसू बहाते हुए—
"आर्त भारत ! जनक हूँ मैं

जैमिनि-पतञ्जलि व्यास ऋषियों का;
मेरा ही गोद पर शैशव-विनोद कर
तेरा है बढ़ाया मान
राम- कृष्ण- भीमार्जुन- भीष्म- नर देवों ने।
तुमने मुख फेर लिया,

सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल,
हो बसे नव छाया में,
नव स्वप्न ले जगे,
भूले वे मुक्त प्रान, साम-गान, सुधा-पान।"
बरसो असीस, हे पुरुष-पुराण
तब चरणों में प्रणाम है।

दिल्ली

क्या यह वही देश है—
भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र,

चिर कुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य-दीप्त
उड़ती है आज भी जहाँ के वायुमण्डल में
उज्ज्वल, अधीर और चिर नवीन?
श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहाँ भारत ने

गाता गीत— सिंहनाद—
मर्म वाणी जीवन-संग्राम की—
सार्थक समन्वय ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग का?
यह वही देश है
परिवर्तित होता हुआ ही देखा गया जहाँ

भारत का भाग्य चक्र ?—
आकर्षण तृष्णा का
खींचता ही रहा जहाँ पृथ्वी के देशों को
स्वर्ण-प्रतिमा की ओर ? —
उठा जहाँ शब्द घोर
संसृति के शक्तिमान दस्युओं का अदमनीय,
पुनः पुनः बर्बरता विजय पाती गई
सभ्यता पर, संस्कृति पर,
काँपे सदा रे अधर जहाँ रक्त धारा लख
आरक्त हो सदैव।
क्या यह वही देश है—
यमुना - पुलिन से चल
'पृथ्वी' की चिता पर
नारियों की महिमा उस सती संयोगिता ने
किया आहूत जहाँ विजित स्वजातियों को
आत्म - बलिदान में :- -
पढ़ो रे; पढ़ो रे पाठ,
भारत के अविश्वस्त अवनत ललाट पर
निज चिता भस्म का टीका लगाते हुए,
सुनते ही रहे खड़े भय से विवर्ण जहाँ
अविश्वस्त संज्ञा हीन पतित आत्म विस्मृत नर ?
बीत गये कितने काल,
क्या यह वही देश है
बदले किरीट जिसने सैकड़ों महीप - भाल ?

क्या यह वही देश है
सन्ध्या की स्वर्ण वर्ण किरणों में
दिग्वधू अलस हाथों से
थी भरती जहाँ प्रेम की मदिरा,
पीती थीं वे नारियाँ
बैठी झरोखे में उन्नत प्रासाद के ?—
बहता था स्नेह-उन्माद नस-नस में जहाँ
पृथ्वी साधना के कमनीय अंगों में ?—
ध्वनिमय ज्यों अंधकार
दूर गत सुकुमार,
प्रणयियों की प्रिय कथा
व्याप्त करती थी जहाँ
अम्बर का अन्तराल ?
आनन्द-धारा बहती थी शत लहरों में
अधर के प्रान्तों से;
अतल हृदय से उठ
बाँधे युग बाहुओं के
लीन होते थे जहाँ अन्त हीनता में मधुर ?—
अश्रु बह जाते थे
कामिनी के कोरों से
कमल की कापों से प्रात की ओस ज्यों
मिलन की तृष्णा से फूट उठते थे फिर
रंग जाता नया राग ?—
केश-सुख-भार रख मुख प्रिय-स्कन्ध पर
भाव की भाषा से
कहती सुकुमारियाँ थीं कितनी ही बातें जहाँ

रातें विराम हीन करती हुई ?—
प्रिया की ग्रीवा कपोत बाहुओं से घेर
मुग्ध हो रहे थे जहाँ प्रिय-मुख अनुरागमय ?—
खिलते सरोवर के कमल परागमय
हिलते झुलते थे जहां
स्नेह की वायु से, प्रणय के लोक में
आलोक प्राप्त कर ?
रचे गये गीत,
गये गाये जहाँ कितने राग
देश के, विदेश के !
बहीं धारायें जहां कितनी किरणों को चूम !
कोमल निषाद भर
उठे वे कितने स्वर !
कितनी वे रातें
स्नेह की बातें रक्खे निज हृदय में
आज भी हैं मौन जहाँ !
यमुना की ध्वनि में
है गूँजती सुहाग-गाथा,
सुनता है अंधकार खड़ा चुपचाप जहाँ !
आज वह 'फिरदौस'
सुनसान है पड़ा।
शाही दीवान-आम स्तब्ध है हो रहा
दुपहर को, पार्श्व में
उठता है झिल्लीरव,

बोलते हैं स्यार रात यमुना कछार में,
लीन हो गया है रव
शाही अंगनाओं का,
निस्तब्ध मीनार,
मौन हैं मकबरे :—
भय में आशा को जहाँ मिलते थे समाचार,
टपक पड़ता था जहाँ आँसुओं में सच्चा प्यार !

उद्बोधन

गरज गरज घन अंधकार में गा अपने संगीत,
बन्धु, वे बाधा-बन्धविहीन
आँखों में नव जीवन की तू अञ्जन लगा पुनीत,
बिखर झर जाने दे प्राचीन।
बार बार उर की वीणा में कर निष्ठुर झंकार
उठा तू भैरव निर्जर राग,
बहा उसी स्वर में सदियों का दारुण हाहाकार
सञ्चरित कर नूतन अनुराग।
बहता अन्ध प्रभञ्जन ज्यों वह त्योंही स्वर-प्रवाह
मचल कर दे अञ्चल आकाश
उड़ा उड़ा कर पीले पल्लव, कर सुकोमल राह,
तरुण तरु; भर प्रसून की प्यास।
काँपे पुनर्वार पृथ्वी शाखा-कर-परिणय-माल,
सुगंधित हो रे फिर आकाश,
पुनर्वार गायें नूतन स्वर, नव कर से दे ताल,
चतुर्दिक छा जाये विश्वास।
मन्द्र उठा तू बन्द-बन्द पर जलने वाली तान,

विश्व की नश्वरता कर नष्ट,
जीर्ण-शीर्ण जो, दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट।
ताल-ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय-कपाट,
खोल दे कर कर-कठिन प्रहार,
आये अभ्यन्तर संयत चरणों से नव्य विराट,
करे दर्शन, पाये आभार!
छोड़, छोड़ दे शङ्काएँ, रे निर्झर गर्जित वीर!
उठा केवल निर्मल निर्घोष;
देख सामने, बना अचल उपलों को उत्पल, धीर!
प्राप्त कर फिर नीरव सन्तोष।
भर उद्दाम वेग से बाधाहर तू कर्कश प्राण,
दूर करदे दुर्बल विश्वास,
किरणों की गति से आ, आ तू, गा तू गौरव-गान
एक कर दे पृथ्वी-आकाश।

तुलसीदास जी की चेतना

"जागो, जागो, आया प्रभात,
बीती वह, बीती, अध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल;
बाँधो, बाँधो किरणें चेतन,
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन;
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल।

× × ×

होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर,

कवि का प्रति छवि में जीवनहर, जीवनभर;
भरती इधर, है उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल,
जय, इधर ईश, है उधर सबल माया-कर।

× × +

हो रहे आज जो खिन्न-खिन्न
छुट-छुट कर दल से भिन्न-भिन्न
यह अकल-कला, गह सकल छिन्न, जोड़ेगी,
रवि-कर ज्यों बिन्दु बिन्दु जीवन
संचित कर करता है वर्षण,
लहरा भव-पादप, मर्षण-मन मोड़ेगी।

× × ×

"देश-काल के शर से बिंध कर
यह जागा कवि अशेष-छविधर
इसका स्वर भर भारती मुखर होएँगी;
निश्चेतन, निज तन मिला विकल,
छलका शत-शत कल्मष के छल
बहतीं जो वे रागिनी सकल सोएँगी।

× + +

"तम के अमार्ज्य के तार-तार
जो, उन पर पड़ी प्रकाश-धार;
जग-वीणा के स्वर के बहार रे जागो;
इस कर अपने कारुणिक प्राण

कर लो सक्षम देदीप्यमान—
दे गीत विश्व को रुको, दान फिर माँगो।"

× × ×

क्या हुआ कहाँ, कुछ नहीं सुना,
कवि ने निज मन भाव में गुना,
साधना जगी केवल अधुना प्राणों की,
देखा सामने, मूर्ति छल-छल
नयनों में छलक रही अचपल,
उपमिता न हुई समुच्च सकल तानों की

× × ×

जगमग जीवन का अन्त्य भाष—
"जो दिया मुझे तुमने प्रकाश,
अब रहा नहीं लेशावकाश रहने का
मेरा उसमें गृह के भीतर:
देखूँगा नहीं कभी फिर कर,
लेता मैं, जो वर जीवन-भर बहने का।"

× × ×

चल मन्दचरण आए बाहर,
उर में परिचित वह मूर्ति सुघर
जागी विश्वाश्रय महिमाधर, फिर देखा—
संकुचित, खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख-जल,
प्राची दिगन्त-उर में पुष्कल रवि-रेखा।

———

सुमित्रा नन्दन पंत

बादल

सुरपति के हमहीं हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर;
मेघ दूत की सजल कल्पना,
चातक के चिर-जीवनधर;
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर,
सुभग स्वाति के मुक्ताकर,
विहग-वर्ग के गर्भ - विधायक,
कृषक-बालिका के जलधर।
जलाशयों में कमल - दलों सा
हमें खिलाता नित दिनकर,
पर बालक-सा वायु सकल-दल
बिखरा देता, चुन सत्वर,
लघु-लहरों के चल-पलनों में
हमें झुलाता जब सागर,
वहीं चील-सा झपट बाँह गह,
हमको ले जाता ऊपर।
भूमि-गर्भ में छिप विहङ्ग-से,
फैला कोमल, रोमिल - पङ्ख,

हम असंख्य अस्फुट-बीजों में
लेते साँस, छुड़ा जड़-पङ्क;
विपुल - कल्पना - से त्रिभुवन की
विविध-रूप धर भरनभ अङ्क;
हम फिर क्रीड़ा-कौतुक करते,
छा अनन्त-उर में निःशङ्क।
कभी चौकड़ी भरते मृग - से
भू पर चरण नहीं धरते;
मत्त-मतङ्गज कभी झूमते;
सजग-शशक नभ को करते;
कभी कीश-से अनिल डाल में
नीरवता मे मुँह भरते;
वृहत् - गृद्ध - से विहग - छदों को
बिखराते नभ में तरते;
कभी अचानक, भूतों का-सा
प्रगटा विकट महा - आकार;
कड़क, कड़क, जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार;
फिर परियों के बच्चों-से हम
सुभग सीप के पङ्ख पसार;
समुद पैरते शुचि - ज्योत्स्ना में,
पकड़ इन्दु के कर-सुकुमार।
अनिल - विलोड़ित गगन - सिन्धु में
प्रलय - बाढ़ - से चारों ओर

उमड़ उमड़ हम लहराते हैं
बरसा उपल, तिमिर, घनघोर;
बात बात में, तूल तोम सा
व्योम-विटप से झटक झकोर।
हमें उड़ा ले जाता जब द्रुत
दल-बल-युत घुस बातुल-चोर।
बुद् बुद् - द्युति तारक - दल-तरलित
तम के यमुना-जल में श्याम।
हम विशाल जम्बाल - जाल - से
कहते हैं अमूल, अविराम
दमयन्ती सी कुमुद - कला के
रजत - करों में फिर अभिराम
स्वर्ण-हंस-से हम मृदु-ध्वनि कर,
कहते प्रिय सन्देश ललाम।

दुहरा विद्युद्दाम चढ़ा द्रुत,
इन्द्र-धनुष की कर टङ्कार;
विकट पटह से निर्घोषित हो,
बरसा विशिखों - सा आसार,
चूर्ण चूर्ण कर वज्रायुध से
भूधर को, अति भीमाकार
मदोन्मत्त वासव - सेना - से
करते हम नित वायु - विहार।
स्वर्ण - भृङ्ग - तारावलि वेष्टित,
गुञ्जित, पुञ्जित, तरल, रसाल,

मधु गृह से हम गगन-पटल में
लटके रहते विपुल - विशाल ;
जालिक - सा आ अनिल, हमारा
नील - सलिल में फैला जाल,
उन्हें फाँस लेता फिर सहसा
मीनों के - से चञ्चल बाल।

व्योम-विपिन में जब वसन्त सा
खिलता नव - पल्लवित प्रभात,
बहते हम तब अनिल स्रोत में
गिर तमाल - तमके - से पात ;
उदयाचल से बाल - हंस फिर
उड़ता अम्बर में अवदात
फैल स्वर्ण-पङ्खों में हम भी
करते द्रुत मारुत में वात।

सन्ध्या का मादक-पराग पी
झूम मिलिन्दों - से अभिराम
नभ के नील - कमल में निर्भय
करते हम विमुग्ध विश्राम ;
फिर बाडव - से सान्ध्य - सिन्धु में
सुलग, सोख उसको अविराम,
बिखरा देते तारावलि - से
नभ में उसके रत्न निकाम।

धीरे धीरे सशय-से उठ,
बढ़ अपयश - से शीघ्र अछोर,

नभ के उर में उमड़ मोह - से
फैल लालसा - से निशि - भोर ;
इन्द्र चाप - सी व्योम - भृकुटि पर
लटक मौन - चिन्ता - से घोर ,
घोष भरे विप्लव - भय - से हम
छा जाते द्रुत चारों ओर !
पर्वत से लघु-धूलि, धूलि से
पर्वत बन , पल में , साकार
काल - चक्र - से चढ़ते , गिरते ,
पल में जलधर , फिर जलधार :
कभी हवा में महल बनाकर ,
सेतु बाँध कर कभी अपार ,
हम विलीन हो जाते सहसा
विभव - भूति ही - से निस्सार !
नग्न गगन की शाखाओं में
फैला मकड़ी का-सा जाल !
अम्बर के उड़ते पतङ्ग को
उलझा लेते हम तत्काल ।
फिर अनन्त - उर की करुणा-से
त्वरित द्रवित हो कर उत्ताल —
आतप में मूर्छित कलियों को
जाग्रत करके हिम - जल डाल ।
हम सागर के धवल हास हैं ,
जल के धूम , गगन की धूल ;

अनिल - फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि - वसन, वसुधा के मूल;
नभ में अवनि, अवनि में अम्बर,
सलिल - भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल में थल, थल में जल,
दिन के तम पावक के तूल,
व्योम - वेलि, ताराओं की गति,
चलते - अचल, गगन के गान,
हम अपलक - तारों की निद्रा,
ज्योत्स्ना के हिम, शशि के यान;
पवन-धेनु, रवि के पांशुल-श्रम,
सलिल-अनल के विरल-वितान,
व्योम-पलक, जल-खग, बहते थल,
अम्बुधि की कल्पना महान।
धूम - धुँआरे, काजर - कारे,
हम ही विकरारे बादर,
मदन राज के बीर बहादुर,
पावस के उड़ते फणिधर।
चमक झमकमय मंत्र वशीकर,
छहर - घहर मय विष - सीकर
स्वर्ग - सेतु - से—इन्द्र - धनुष - धर
काम रूप घनश्याम अमर!

छाया

कौन कौन तुम परिहत वसना,
म्लान मना भू पतिता-सी?
धूलि - धूसरित मुक्तकुंतला,
किसके चरणों की दासी
अहा! अभागिन हो तुम मुझसी,
सजनि! ध्यान में अब आया,
तुम इस तरुवर की छाया हो,
मैं उनके पद की छाया।
विजन निशा में सहज गले तुम
लगती हो फिर तरुवर के,
आनन्दित होती हो सखि! नित
उसकी पद सेवा करके।
और हाय! मैं रोती फिरती
रहती हूं निशि दिन वन वन।
नहीं सुनाई देती फिर भी
वह वंशी-ध्वनि मन मोहन।
सजनि! सदा श्रम हरती हो तुम
पथिकों का, शीतल करके,
मुझ पथिकिनि को भी आश्रय दो,
मनस्ताप मेरा हरके।

मौन निमंत्रण

स्तब्ध-ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,

विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान ;

न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन !

सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर भरती जब पावस धार ;

न जाने, तपक तड़ित में कौन
मुझे इङ्गित करता तब मौन !

देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास :

न जाने, सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन !

क्षुब्ध जल शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात ;

उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता कौन ।

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर,
विहग कुल की कल कंठ हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर;

न जाने, अलस पलक दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन !

तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर कुल की झनकार
कँपा देती तन्द्रा के तार;

न जाने, खद्योतों में कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन ?

कनक छाया में, जबकि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुञ्जार;

न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !

बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
शून्य शय्या में, श्रमित-अपार,
जुड़ाती जब मैं आकुल-प्राण;

न जाने, मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया-जग में मौन !

न जाने कौन, अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान;

अहे सुख-दुख के सहचर मौन !
नहीं कह सकती तुम हो कौन !

—:०:—

महादेवी वर्मा

प्रभात

चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन-कन से फूट-फूट, मधु के निर्झर से सजल गान ।
इन कनक रश्मियों में अथाह, लेता हिलोर हिम सिंधु जाग,
बुद बुद से बह चलते अपार, उसमें विहगों के मधुर राग,
बनती प्रवाल का मृदुल कूल
जो क्षितिज रेख थी कुहर म्लान ॥

नव कुंद कुसुम से मेघ पुञ्ज, बन गये इन्द्र धनुषी वितान ।
दे मृदु कलियों की चटक, ताल, हिम बिंदु नचाती तरल प्राण ।

धो स्वर्ण प्रात में तिमिर गात
दुहराते अलि निशि मूक तान ॥
सौरभ का फैला केश जाल, करतीं समीर परियाँ विहार,
गीली केशर मद झूम-झूम, पीते तितली के मधु कुमार ।

मर्मर का मधु सङ्गीत छेड़
देते हैं हिल पल्लव अजान ॥
फैला अपने मृदु स्वप्न पङ्ख, उड़ गई नींद निशि क्षितिज पार,
अधखुले दृगों के कञ्ज कोष पर छाया विस्मृति का खुमार ॥

रङ्ग रहा हृदय ले अश्रुहार,
यह चतुर चितेरा सुधि विहान ॥

गीत

मैं बनी मधुमास आली !
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी,
उमड़ आई री दृगों में
सजनि कालिंदी निराली !
रजत स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली,
जाग सुक-पिक ने अचानक मदिर पञ्चम तान ली,
बह चली निश्वास की मृदु,
वात मलय निकुञ्ज वाली !
सजल रोमों में बिछे हैं पाँवड़े मधुस्नात से,
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से,
क्या न अब प्रिय की बजेगी,
मुरलिका मधु राग वाली !
मैं बनी मधुमास आली !

अधिकार

वे मुस्काते फूल नहीं
जिनको आता है मुरझाना;
वे तारों के दीप नहीं,
जिनको भाता है बुझ जाना;
वे नीलम के मेघ नहीं,
जिनको है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज नहीं,
जिसने देखी जाने की राह;

वे सूने से नयन नहीं,
जिनमें बनते आँसू मोती;
वह प्राणों की सेज नहीं
जिसमें बेसुध पीड़ा रोती,
ऐसा तेरा लोक-वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद;
जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद !

× × ×

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ? अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !

उद्बोधन

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना
जाग तुझको दूर जाना !
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले;
आज पी आलोक को डोले तिमिर की छोर छाया,
जाग या विद्युत-शिखाओं में निठुर तूफान बोले !
पर तुझे है नाश पथ पर चिन्ह अपने छोड़ आना !
बाँध लेंगे क्या तुझे ये मोम के बन्धन सजीले ?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले ?
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,

क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस गीले?
तू न अपनी छाँह को अपने लिये कारा बनाना।
वज्र का उर एक छोटे अश्रु कण में धो गलाया,
दे किसे जीवन सुधा दो घूंट मदिरा माँग लाया?
सो गई आँधी मलय की बात का उपधान ले क्या?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया?
अमरता सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना!
कह न ठण्डी सांस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी,
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका!
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी!
है तुझे अंगार शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना!

गीत

मधुर मधुर मेरे दीपक जल।
युग युग प्रति दिन प्रति क्षण प्रति पल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम सा घुल रे मृदुतन
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल गल
पुलक पुलक मेरे दीपक जल।

सारे शीतल कोमल नूतन
माँग रहे तुझसे ज्वाला कण

विश्व शलभ सिर धुन कहता 'मैं'।
हाय न जल पाया तुझ में मिल
सिहर सिहर मेरे दीपक जल।

जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेह हीन नित कितने दीपक
जलमय सागर का उर जलता
विद्युत ले घिरता है बादल
विहँस विहंस मेरे दीपक जल।

द्रुम के अङ्ग हरित कोमल तम,
ज्वाला को करते हृदयंगम
वसुधा के जड़ अन्तर में भी
बाकी है तोपों की हलचल;
बिखर बिखर मेरे दीपक जल।

मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भयकर
मैं अञ्चल की ओट किये हूँ
अपनी मृदु पलकों से चञ्चल
सहज सहज मेरे दीपक जल।

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन
मैं दृग के अक्षय कोषों से
तुममें भरती हूँ आँसू जल
सजल सजल मेरे दीपक जल।

तम असीम तेरा प्रकाश चिर
खेलेंगे नव खेल निरन्तर
तम के अणु अणु में विद्युत सा
अमिट चित्र अङ्कित करता चल।

सरल सरल मेरे दीपक जल।

तू जल जल जितना होता क्षय
वह समीप आता छलनामय,
मधुर मिलन में मिल जाता तू
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल मिल।

मदिर मदिर मेरे दीपक जल।
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

—:o:—

सुभद्रा कुमारी चौहान

झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी।
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

कानपूर के नाना की मुँहबोली बहिन छबीली थी,
लक्ष्मी बाई नाम पिता की वह सन्तान अकेली थी।
नाना के संग पढ़ती थी वह नाना के संग खेली थी,
बरछी ढाल कृपाण कटारी उसकी यही सहेली थी।
वीर शिवा जी की गाथायें उसको याद जबानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी, वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार।
नकली युद्ध व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार।

महाराष्ट्र कुलदेवी उसकी भी आराध्य भवानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मी बाई झाँसी में।
राज महल में बजी बधाई खुशियाँ छाई झाँसी में,
सुभट बुन्देलो की विरुदावलि सी वह आई झाँसी में।
चित्रा ने अर्जुन को पाया शिव से मिली भवानी थी,
बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

मुदित हुआ सौभाग्य मुदित महलो में उजियाली छाई,
किन्तु कालगति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई।
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियां कब भाईं,
रानी विधवा हुई हाय विधि को भी दया नहीं आई।
निःसन्तान मरे राजा जी रानी शोक समानी थी,
बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी!
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौजी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अवसर अच्छा पाया।
फौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर बृटिश राज्य झाँसी आया।
अश्रुपूर्ण रानी ने देखा झाँसी हुई विरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

अनुनय विनय नहीं सुनता है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन गया चाहता था यह जब भारत आया।
डलहौजी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया,
राजाओं नवाबों को भी उसने पैरों ठुकराया।
रानी दासी बनी; यह दासी अब महरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

छिना राजधानी देहली की लखनऊ छीना बातों बात,
कैद पेशवा था बिठूर में हुआ नागपुर पर भी घात।
उदयपूर तंजौर सितारा करनाटक की कौन बिसात,
जब कि सिंध पंजाब ब्रह्म पर अभी हुआ था बज्र निपात,
बङ्गाले मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

रानी रोईं रनवासों में बेगम गम से बेजार, थीं,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाजार।
सरे आम नीलाम छापते थे अंग्रेजों के अखबार,
नागपूर के जेवर लेलो लखनऊ के लो नौलख हार।
थी परदे की इज्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

कुटियों में थी विषम वेदना महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान।
नाना धुन्धूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रणचण्डी का कर दिया प्रकट आह्वान।

सुभद्रा कुमारी चौहान

हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

महलों ने दी आग झोपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतन्त्रता की चिनगारी अन्तरगत से आई थी।
झाँसी चेती दिल्ली चेती लखनऊ लपटें छाई थी,
मेरठ कानपुर पटना ने भारी धूम मचाई थी।
जबलपूर कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

इसी स्वतन्त्रता महायज्ञ में कई वीरवर आये काम,
नाना धुन्धूपंत ताँतिया चतुर अजीमुल्ला सर नाम।
अहमदशाह मौलवी ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम।
लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुर्बानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

इनकी गाथा छोड़ चले हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मी बाई मर्द बनी मर्दानों में।
लेफ्टिनेंट वाकर आ पहुँचा फिर आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली हुआ द्वंद असमानों में।
जख्मी होकर वाकर भागा उसे अजब हैरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

रानी बढ़ी कालपी आई कर सौ मील निरन्तर पार,
घोड़ा थक कर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार।
यमुना तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी किया ग्वालियर पर अधिकार।
अंग्रेजों के मित्र सिंधिया ने छोड़ी रजधानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

विजय मिली पर अंग्रेजों की सेना फिर घिर आई थी,
अबके जनरल स्मिथ सम्मुख था उसने मुँह की खाई थी।
काना और मन्दिरा सखियाँ रानी के सँग आई थी,
युद्ध क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी।
पर पीछे ह्यूरोज आ गया हाय; घिरी अब रानी थी,
बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

तो भी रानी मार काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था वह संकट विषम अपार।
घोड़ा अड़ा नया घोड़ा था इतने में आ गये सवार,
रानी एक शत्रु बहुतेरे होने लगे वार पर वार।
घायल होकर गिरी सिंहनी उसे वीरगति पानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

रानी गई सिधार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की सच्ची वह अधिकारी थी।
अभी उम्र कुल तेइस की थी मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आई बन स्वतन्त्रता-नारी थी।

दिखा गई पथ सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

जाओ रानी याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी—
'यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनासी',
होवे चुप इतिहास लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी।
तेरा स्मारक तू ही होगी तू खुद अमिट निशानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

—:o:—

रामनरेश त्रिपाठी

अन्वेषण

मैं ढूंढ़ता तुझे था जब कुञ्ज और बन में,
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में।

तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता सङ्गीत में, भजन में।

मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू,
मैं देखता तुझे था माशूक के वदन में।

दुख में रुला रुला के तूने मुझे चिताया,
मैं मस्त हो रहा था तब हाय, अञ्जुमन में।

बाजे बजा २ कर मैं था तुझे रिझाता,
तब तू लगा हुआ था पतितों के सङ्गठन में।

मैं था विरक्त तुझ से जग की अनित्यता पर,
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में।

कठिनाइयाँ दुखों का इतिहास ही सुधन है,
मुझको समर्थ कर तू बस कष्ट के सहन में।

दुख में न हार मानूं सुख में तुझे न भूलूं,
ऐसा प्रभाव भर दे मेरे अधीर मन में।

पथिक से

जग में सचर अचर जितने हैं सारे कर्म निरत हैं
धुन है एक न एक सभी को सब के निश्चित व्रत हैं।
जीवन-भर आतप सह वसुधा पर छाया करता है।
तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में कैसे तत्परता है ॥१॥

सिंधु विहङ्ग तरङ्ग-पङ्ख को फड़का कर प्रतिक्षण में।
है निमग्न नित भूमि-अण्ड के सेवन में-रक्षण में।
कोमल मलय पवन-घर-घर में सुरभि बाँट आता है।
सस्य सींजने घन जीवन धारण कर नित जाता है ॥२॥

रवि जग में शोभा सरसाता सोम सुधा बरसाता।
सब हैं लगे कर्म में कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता।
है उद्देश्य नितांत तुच्छ तृण के भी लघु जीवन का।
उसी पूर्ति में वह करता है अन्त कर्ममय तन का ॥३॥

तुम मनुष्य हो, अमित बुद्धि-बल-विलसित जन्म तुम्हारा।
क्या उद्देश्य-रहित है जग में तुमने कभी विचारा ?
बुरा न मानो, एक बार सोचो तुम अपने मन में।
क्या कर्त्तव्य समाप्त कर लिए तुमने निज जीवन में ॥४॥

तुम्हे उचित था, तुम उदार बन कर घर घर में जाते।
अमित प्रेम-निधि एक-एक प्राणी को मुफ़्त लुटाते।
किन्तु कृपण बन सब समेट सानन्द स्वयं रहते हो।
इसपर भी तुम स्वार्थ-ग्रसित कुत्सित जग को कहते हो ॥५॥

केवल अपने लिए सोचते मौज-भरे गाते हो।
पीते, खाते, सोते, जगते, हँसते, सुख पाते हो।

जग से दूर, स्वार्थ साधन हीसतत तुम्हारा यश है।
सोचो तुम्हीं, कौन जन जग में तुम-सा स्वार्थ-विवश है ॥६॥

यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा-स्थल है।
दुख है प्रश्न कठोर, देखकर होती बुद्धि-विकल है।
किन्तु आत्म-बल-विज्ञ सत्पुरुष ठीक पहुँच अटकल से।
हल करते हैं प्रश्न सहज में अविरल मेधा-बल से ॥७॥

परम बिचित्र यन्त्र यह जग है उसी शक्ति से चलता।
मत करना अभिमान मिले जो तुमको कभी सफलता।
यद्यपि सब जग का हित-चिन्तन सबको आवश्यक है।
पर प्रत्येक मनुज पर पहला देश-जाति का हक़ है ॥८॥

पैदा कर जिस देश जाति ने तुमको पाला पोसा।
किये हुये है वह निज हित का तुमसे बड़ा भरोसा ॥
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्त्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो बसुधा को शेष स्वजीवन सारा ॥९॥

—:०:—

बालकृष्ण शर्मा (नवीन)

विप्लव-गान

(१)

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये,

एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये,
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहित्राहि रव नभ में छाये,

नाश और सत्यानाशों का, धुँआधार जग में छा जाये,
बरसे आग, जलद जल जाएँ, भस्मसात भूधर हो जाये,

पाप पुन्य सदसद्भावोंकी, धूल उड़ उठे दायें बायें,
नभ का वक्ष-स्थल फट जाये, तारे टूक - टूक हो जायें,

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ--जिससे उथल-पुथल मच जाये'
माता के छाती का अमृतमय पय कालकूट हो जाये

आँखों का पानी सूखे, वे शोणित की घूँटें हो जायें
एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति विचलित हो जाये,
अन्धे मूढ़ विचारों की वह, अचल शिला विचलित हो जाये,
और दूसरी ओर कँपा देने वाला गर्जन उठ धाये,

अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराये,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ—जिससे उथल-पुथल मच जाये,

(२)

नियम और उपनियमों के, ये बन्धन टूक-टूक हो जायें
विश्वम्भर पोषक वीणा के, सभी तार मूक हो जायें
शांति-दण्ड टूटे—उस महा रुद्र का सिंहासन थर्राये,
उसकी पोषक श्वासोच्छ्वास, विश्व के प्राणाङ्ग में घबराये,
नाश ! नाश !! हा महानाश !!!-की प्रलयङ्कारी-आँख खुल जाये,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ—जिससे उथल-पुथल मच जाये ।

जगत उबारो

(१)

धधक रहा है सब भूमण्डल भूधर खौल रहे निशि-वासर,
सखे, आज शोलों की बारिश नभ से होती है झर झर झर ।
घन गर्जन से भी प्रचण्डतर शतघ्नियों का गर्जन भीषण,
घर्षण करता है मानव हिय जग में मचा घोर सघर्षण ।

(२)

नर ही स्वयं बना है नर के रक्त-मांस का प्यारा भक्षक,
आज पुष्प से मानव-हिय में आ बैठा है कोई तक्षक ।
जहाँ दौड़ते थे पहले नर जीवन-दान मृतों को देने,
वहाँ आज बढ़ते हैं वे ही जीवित के प्राणों को लेने ।

(३)

नाश-शकट अपने चक्रों से चूर चूर करता है जन को,
हिंसा की व्यालिनी उगलती है विष, फैलाये निज फन को ।
मानव ने अपनापन खोया उसने अपनाई दानवता,
भीषण संघर्षण में पड़कर चकनाचूर हुई मानवता ।

(४)

यह कैसी विक्षिप्तता अरे ! यह कैसा उन्माद भयङ्कर !
जला रहे हम अपना ही घर ! काट रहे हैं अपना ही सर।
अरे, हमें तो शान्ति-सौख्य का देना है वरदान नरों को,
ध्वस्त नहीं, निर्मित करना है हमको गाँवों को, नगरों को।

(५)

आज खून का नहीं अमिय का वर्षन करने यहाँ पधारो,
आओ इस झंडे के नीचे, अहो वीर ! यह जगत उबारो।

—:o:—

अनूप शर्मा

सुमन

कुसुमित होते फूलते हो मुरझाते तुम,
सुमन कभी तो एक दो दिन जिया करो।
आते मधु पीने को अनेक चंचरीक उन्हें,
गतमधु होकर निराश न किया करो॥
होकर प्रचलित प्रभात के पवन द्वारा,
झूम-झूम झोंके मन्द-मन्द ही लिया करो।
देख निज जीवन रहस्य अपने में छिपा,
हँस पड़ते हो कभी बोल भी दिया करो॥

बालकपन

दो न विश्व-वारिधि को पार करने की सीख,
कागद की नाव बालुका में अभी खेने दो।
ज्ञान-रवि जीवन-प्रभात में उगा है नहीं,
शिशुता-उषा के चरणारविन्द सेने दो।
आँख से अखाड़े में कनीनिका की कोट तक,
खेल-खेल अभिभावकों को सुख लेने दो।
फिर न मिलेगा कभी खेलना न छेड़ो इन्हें,
बालक अभी हैं कुछ और खेल लेने दो॥

महाभिनिष्क्रमण

अधीर थे विश्व-विपत्ति-भार से,
स-नीर थे लोचन देख आपदा।
खड़े खड़े रंग-निकेत-द्वार पै,
लगे सुधी छन्दक को पुकारने॥

समीप ही था वह सुप्त सारथी,
लखा, निहारा मुख शाक्यवीर का।
कहा, "तमिस्रा अति घोर है, अभी,
चले कहाँ, विस्मय है मुझे प्रभो"॥

उपांशु बोले, "तुम विज्ञ सारथी,
तुरंग लाओ अति शीघ्र हे सखे।
समीप आया वह काल है कि मैं,
विलास-कारागृह छोड़ दूँ, चलूँ॥

मदीय है मानस सार्वभौम ही,
नहीं रुकेगा वह एक देश में।
अतः सखे, जाग उठी प्रवृत्ति है,
समस्त - भू मंगल - कामनामयी"॥

तदा कहा छन्दक ने विनीत हो,
"अरे प्रभो, क्या करते अनर्थ हैं?
कुवाक्य क्या वे गणकाधिनाथ के,
सभी घटेंगे इस घोर रात्रि में"॥

"महान शुद्धोधन सूनु, हाय! क्या,
फिरा करेगा तज स्वीय राज्य भी?

कुवाक्य कार्त्तान्तिक के अवश्य ही,
यथार्थ होंगे इस काल-रात्रि में" ॥

नृपाल जो हैं अति पुण्य कर्म के,
उन्हें बना के मृत-तुल्य आप यों।
सदैव भिक्षा पर दत्त-चित्त हो,
कहाँ फिरेंगे यह तो विचार लें" ?

कुमार ने उत्तर यों दिया उसे,
यही, सखे, आगम-हेतु जान तू,
स-छत्र-सिंहासन राज्य त्याज्य हैं;
अकार्य है शासन बन्धु-वर्ग पै ॥

सखे मुझे तो बनना अवश्य है—
समस्त-भू-मण्डल-राज राज ही,
न स्वीय आनन्द - विधान - हेतु जो—
न प्रेम सो सत्य, मृषा प्रपंच है ॥

नृपाल से, शासन से, कलत्र से,
सभी प्रजा है, सब जीव मात्र से,
प्रगाढ़ है स्नेह, इसीलिये उठी
मही- समुद्धार - उपाय - कल्पना ॥

"तुरंग लाओ अतएव शीघ्र ही,
समीप संकल्प, विकल्प दूर है"।
चला तहाँ छन्दक अश्वगेह को,
सँवार के कन्थक ला खड़ा किया ॥

अभीशु थी सुन्दर श्वेत रंग की,
अलक्त पर्य्याण नवीन था पड़ा,
लगी हुई थी दृढ़ पाद ग्राहिणी,
तुरंग सज्जीकृत सामने हुआ ॥

समक्ष देखा निज नाथ को यदा,
प्रसन्न हो कंथक हींसने लगा।
परन्तु सोते जन के न कान में,
महान-हेषा - रव निष्ट हो सका ॥

महर्ष नेत्राम्बुज से पुनः पुनः
विलोक के कंथक को समक्ष में,
सु-पृष्ट पै दी थपकी तुरंग के,
सम्हालते बाल कहा विमुग्ध हो ॥

"अहो! अहो! कन्थक, धैर्य्य छोड़ दो,
बने जहाँ लौं अविराम ले चलो,
प्रगाढ़ इच्छा मम है कि शीघ्र ही
करूँ समुद्धार समस्त विश्व का ॥

अतः करो साहस ले चलो मुझे,
रुको न जो भी पथ में दवाग्नि हो,
निरवात से, प्रस्तर से प्रपूर्ण जो,
मिले कहीं मार्ग, न पाँव मन्द हो ॥

चलो मनोवेग - समान ही सखे,
उड़ो अभी सत्वर वैनतेय-से।
बढ़े चलो विद्युत के प्रवेग से,
प्रवाह पीछे पड़ जाय वायु का" ॥

गुरुभक्तसिंह (भक्त)

वीर भारत

अक्षर बद्ध पुस्तकें देखीं हस्त लिखित बहु भाषायें।
शिला लेख इतिहासिक देखे, किन्तु न पूजी आशायें॥

देश द्वेष से, स्वाभिमान से, धर्म पक्ष से रख कर लाग।
जाति जाति ने व्यक्ति व्यक्ति ने अपना अपना गाया राग॥

पर अतीत ने प्रिय लेखक बन खींची जो सच्ची तसवीर।
उसमें त्रुटि की छूत नहीं है, पक्षपात का नहीं समीर॥

बोल उठी रज राजपुताने की शोणित से सनी हुई।
"धर्म-देश-हित न्योछावर कर वीर पुत्र मैं धनी हुई॥

पग मत धरना, मस्तक धरना, है कण कण में सोता वीर।
फड़क उठेगा रक्त शक्ति से अरि दलने को तुरत अधीर॥

गंगा जमुना कल कल करके कहती हैं बेकल सी क्या?
कल की मुझको याद दिलाती, देख आज की दलित दशा॥

कहती है हर लहर तड़प कर कल था यहीं प्रताप बली।
बल्कल पहन रहा जंगल में सुख सम्पत्ति की शरण न ली॥

किये दांत खट्टे दुश्मन के, रख ली हिन्दूपन की लाज।
कल जिससे अरि काँप रहे थे कहाँ आज वह है सिरताज"॥

काशी, मथुरा, अवध आदि के मन्दिर टूटे जो हैं शेष।
टूटे फूटे शब्दों द्वारा गिर गिर देते क्या उपदेश?

"हम तो गिरे कोटि सुत होते—धर्म कर्म संयम वाले।
मिटते मिटते देख रहे हैं वीर सुअन आने वाले॥
करते हैं क्या पूज्य धर्म की गिरती ध्वजा बचाने को।
मिट जाने के पहिले मुझ से आते हैं मिट जाने को॥
हिन्दू धर्म-सुमन लतिका जो रक्त धार से सींचेगा।
वीर गुरू गोविन्द पुत्र सम बलि हो दम नहिं खींचेगा॥
निज तन लगा प्रेम गारा से शिल्पी भक्त बनावेगा।
नव निर्मित मन्दिर यह मेरा तब अरि कौन गिरावेगा"॥

मेहर की शैशव शोभा

इन घासों के मैदानों में, इन हरे-भरे मखतूलों पर।
इन गिरि शिखरों के अंकों में, इन सरिताओं के कूलो पर॥
जो रहा चाटता ओस रात भर प्यासा ही था घूम रहा।
वह मारुत पुष्पों का प्याला खाली कर कर है झूम रहा॥

पर्वत के चरणों में लिपटी वह हरी भरी जो घाटी है।
जिसमें झरने की झर झर है, फूलो ही से जो पाटी है॥
उसके तट के सुरम्य भू पर, झाड़ी के झिल मिल घूँघट में।
है नई कली इक झाँक रही लिपटी घासों ही के पट में॥

कैसी प्यारी वह कलिका है—नवजात बालिका सोई है।
वह पड़ी अकेली देख रही है पास न उसके कोई है॥
हैं खेल रहीं उससे आकर क्वाँरी क्वाँरी हिम बालायें।
हो गई निछावर इस छवि पर नभ की सब तारक मालायें॥

यह नव मयंक है उगा हुआ चारों दिशि छिटके तारे हैं।
ऊषा ने किये निछावर ये मोती जो प्यारे प्यारे हैं॥

स्वर लहरी तो खेल रहा परदे में जननी बीणा है।
इस भू-मण्डल की मुँदरी का यह कन्या सुघर नगीना है॥

मृदु कलियाँ चुटकी बजा बजाकर बच्चे को बहलाती हैं।
कोमल प्रभात किरणें हिमकण में नहा नहा नहलाती हैं॥
यह भावी के रहस्यमय अभिनय की पहली ही झाँकी है।
यह सुभग चित्र किसने खींचा ? क्या मूर्ति गढ़ी यह बाँकी है॥

सुरभित पुष्पों की रज औ लेकर मोती का पानी।
हिम बालाओं के कर से जो जो गई प्रेम से सानी॥
पृथिवी की चाक चलाकर दिनकर ने है मूर्ति बनाई।
छबि फिर बसत की लेकर उसमें डाली है सुघराई॥

चरखे नक्षत्रों के चल थे सूत कातते जाते।
जिनको लपेट रवि, कर से, थे ताना सा फैलाते॥
सुन्दर विहँग आ जाकर जिसमें बुनते थे बाना।
फिर सान्ध्य जलद भर जाता तितली का रंग सुहाना॥
ऐसे अनुपम पट में थी शोभित वह विश्व निकाई।
जिसकी छवि निरख निरख कर मोहित थी विधि निपुणाई॥

—:०:—

रामधारीसिंह 'दिनकर'

हिमालय के प्रति

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

साकार, दिव्य गौरव विराट !
पौरुष के पुञ्जी भूत ज्वाल !
मेरी जननी के हिम - किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

युग - युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त,
युग - युग गर्वोन्नत, नित महान
निस्सीम व्योम में तान रहे,
युग से किस महिमा का वितान ?

कैसी अखंड यह चिर समाधि ?
यतिवर ! कैसा यह अमर ध्यान ?
तू महा शून्य में खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान ?

उलझन का कैसा विषम जाल
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

ओ, मौन तपस्या - लीन यती !
पल - भर को तो कर दृगोन्मेष !
रे ज्वालाओं से दग्ध, बिकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश।

सुख सिंधु, पञ्चनद, ब्रह्मपुत्र
गङ्गा यमुना की अमिय धार
जिस पुण्य भूमि की ओर बही
तेरी बिगलित करुणा उदार।

जिसके द्वारों पर खड़े क्रान्त
सीमापति ! तूने की पुकार।
'पद - दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार,।

उस पुण्य भूमि पर आज तपी !
रे ! आन पड़ा सङ्कट कराल,
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे,
डस रहे चतुर्दिक विविध व्याल।
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

कितनी मणियाँ लुट गईं ? मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष।
तू ध्यान मग्न ही रहा इधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।

कितनी द्रुपदा के बाल खुले,
कितनीं कलियो का अंत हुआ,
वह हृदय खोल चित्तौर यहाँ
कितने दिन ज्वाल - बसन्त हुआ

पूछे, सिकता - कण से हिमपति
तेरा वह राजस्थान कहाँ ?
बन-बन स्वतन्त्रता दीप लिये
फिरने वाला बलवान कहाँ ?

तू पूछ अवध से, राम कहाँ ?
वृन्दा ! बोलो, घनश्याम कहाँ ?
ओ मगध ! कहाँ मेरे अशोक ?
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ ?

पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारणी सुकुमारी,
तू पूछ, कहाँ इसने खोई ?
अपनी अनन्त - निधियाँ सारी ?

री कपिलवस्तु ? कह बुद्धदेव
के वे मङ्गल उपदेश कहाँ ?
तिब्बत, इरान, जापान, चीन,
तक गये हुए सन्देश कहाँ ?

वैशाली के भग्नावशेष से
पूछ लिच्छवी - शान कहाँ ?
ओ री उदास गंडकी ! बता
विद्यापति - कवि के गान कहाँ ?

तू मौन त्याग कर पूछ आज
बंगाल, नवाबी ताज कहाँ ?
भारत का अंतिम ज्योति नयन
मेरा प्यारा 'सीराज' कहाँ ?

तू तरुण देश से पूछ अरे!
गूँजा कैसा यह ध्वंस राग?
अम्बुधि - अन्तस्थल - बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग?

प्राची के प्रांगण बीच देख
जल रहा स्वर्ण-युग अग्निज्वाल
तू सिंहनाद कर जाग यती!
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

रे! रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर!
पर फिरा हमें गांडीव, गदा
लौटा दे अर्जुन, भीम वीर!

कह दे शंकर से आज करें
वे प्रलय नित्य फिर एक बार,
सारे भारत में गूंज उठे
'हर-हर-बम' का फिर महोच्चार!

ले अंगड़ाई उठ, हिले धरा
कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैलराट्! हुङ्कार भरे
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।

तू मौन त्याग, कर सिंहनाद
रे तपी! आज तप का न काल,
नव युग - शङ्खध्वनि जगा रही
तू जाग, जाग, मेरे विशाल!

मेरी जननी के हिम किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
नव युग - शंखध्वनि जगा रही।
जागो नगपति ! जागो विशाल !

कुरुक्षेत्र से

प्रभु के दिये हुए सुख इतने
हैं विकीर्ण धरणी पर,
भोग सके जो इन्हें जगत में
कहाँ अभी इतने नर ?

भू से ले अम्बर तक यह जल
कभी न घटने वाला,
यह प्रकाश, यह पवन, कभी भी
नहीं सिमटने वाला।

इस भुज, इस प्रज्ञा के सम्मुख
कौन ठहर सकता है ?
कौन विभव वह जो कि पुरुष को
दुर्लभ रह सकता है ?

सब हो सकते तुष्ट, एक सा
सब सुख पा सकते हैं,
चाहें तो पल में धरती को
स्वर्ग बना सकते हैं।

ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में
मनुज नहीं लाया है,

अपना सुख उसने अपने
भुजबल से ही पाया है।

"ब्रह्मा का अभिलेख पढ़ा—
करते निरुद्यमी प्राणी,
धोते वीर कु-अंक भाल का
वहाँ भ्रुवों से पानी।

"एक मनुज सचित करता है
अर्थ पाप के बल से,
और भोगता उसे दूसरा
भाग्यवाद के छल से।

"नर समाज का भाग्य एक है,
वह श्रम, वह भुजबल है;
जिसके सम्मुख झुकी हुई—
पृथिवी, विनीत नभतल है।

"जिसने श्रम जल दिया उसे
पीछे मत रह जाने दो,
विजित प्रकृति से सबसे पहले
उसको सुख पाने दो।

"जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है,
वह मनुज मात्र का धन है,
धर्मराज, उसके कण कण का
अधिकारी जन-जन है।

"सहज-सुरक्षित रहता यह
अधिकार कहीं मानव का

आज रूप कुछ और दूसरा
ही होता इस भव का।

"राजा-प्रजा नहीं कुछ होता,
होते मात्र मनुज ही।
भाग्य लेख होता न मनुज को
होता कर्मठ भुज ही।

"कौन यहाँ राजा किसका है?
किसकी कौन प्रजा है?
नर ने होकर भ्रमित स्वयं ही
यह बन्धन सिरजा है।

"बँधे धर्म के बन्धन में
सब लोग जिया करते थे,
एक दूसरे का दुख हँस कर
बाँट लिया करते थे।

"ऊँच, नीच का भेद नहीं था,
जन जन में समता थी,
था कुटुम्ब सा जन समाज,
सब पर सबकी ममता थी।

"जी भर करते काम, जरूरत
भर सब जन थे खाते,
नहीं कभी निज को औरों से
थे विशिष्ट बतलाते।

"सब थे बद्ध समष्टि सूत्र में,
कोई छिन्न नहीं था,

किसी मनुज का सुख समाज के
सुख से भिन्न नहीं था।

"हाय, रखा होता संचित कर
तू ने यदि कुछ अपना,
इस संकट में आज नहीं
पड़ता यों तुझे कलपना।

"नहीं टूटती तुझ पर सब के
साथ विपद यह भारी,
जाग मूढ़, आगे के हित
अब भी तो कर तैयारी।

"और' जगा सचमुच मनुष्य
पछतावे से घबरा कर,
लगा जोड़ने अपना धन
औरों की आँख बचाकर।

"चला एक नर जिधर उधर ही
चले सभी नर नारी,
होने लगी आत्म रक्षा की
अलग अलग तैयारी।

"लोभ नागिनी ने विष फूका,
शुरू हो गई चोरी,
लूट मार शोषण, प्रहार
छीना झपटी, बरजोरी।

"छिन्न-भिन्न हो गई शृंखला
नर-समाज की सारी,

लगी डूबने कोलाहल के
बीच मही बेचारी।

"और खड्गधर पुरुष विक्रमी
शासक बना मनुज का,
दण्ड, नीति, धारी शासक
नर-तन में छिपे दनुज का।

तज समष्टि को व्यष्टि चली थी
निज को सुखी बनाने,
गिरी गहन दासत्व - गर्त के
बीच स्वयं अनजाने।

"नर से नर का सहज प्रेम
उठ जाता नहीं भुवन से,
छल करने में सकुचाता यदि
मनुज कहीं परिजन से,

"रहता यदि विश्वास एक में
अचल दूसरे नर का,
निज सुख - चिन्तन मे न भूलता
वह यदि ध्यान अपर का;

तो न मानता कभी मनुज
निज सुख गौरव खोने में,
किसी राज सत्ता के सम्मुख
विनत दास होने में।

"सह न सका जो सहज-सुकोमल
स्नेह सूत्र का बन्धन,

दण्ड - नीति के कुलिश - पाश में
अब है बद्ध वही जन।

"दे न सका नर को नर जो
सुख-भाग प्रीति से, नय से,
आज दे रहा वही भाग वह
राज खड्ग के भय से।

'अवहेला कर सत्य न्याय के
शीतल उद्गारों की,
समझ रहा नर आज भली विधि
भाषा तलवारों की।

"इससे बढ़ कर मनुज-वंश का
और पतन क्या होगा?
मानवीय गौरव का बोलो,
और हनन क्या होगा?"

—:०:—

सोहन लाल द्विवेदी

वासवदत्ता

आज से बहुत दिन पहले की कहता हूँ बात—
जब कि
स्वर्णयुग का खिला था मधुर प्रभात
भारत के प्राची में;
देश धन-धान्य से पूर्ण था,
थे न हम परतंत्र किसी बंधन में,
आये थे मुगल भी न इस देश में
अपनी थी संस्कृति अछूत, पूत-पावन विचारों से
अपना था दिवस, और, अपनी थी सभी बात।
उसी समय,
गौतम के गौरव का, वैभव का,
गूंजा था विशद गान;
गृह-गृह आमंत्रण निमंत्रण तथागत का था,
होता वह धन्य
पहुँच जाते थे देव जहाँ।
यों ही, प्रतिस्पर्धा चला करती थी दिन-रात,
किसके गृह होंगे यह अतिथि आज?
गौतम थे
तरुण-अरुण-करुण श्री से वरुण सम

कान्ति मान, तेजमान;
कितनी ही सुन्दरियाँ, देख देख दिव्य रूप
होती बलिहार श्री चरणों में तथागत के।
एक दिवस,
निर्जन में
मधुऋतु की सध्या मे
जब कि
खिल उठी थीं फुल्ल मालती, लताएँ चारु,
गंध-अंध मधुप थे दौड़ हेर चारों ओर—
सुषमा की प्रतिभा,
एक तरुणी विवांगना-सी,
सुन्दरी प्रणय-अभिलाषा-सी,
मादक मदिरा-सी
मोहक इन्द्रधनु-सी
आनत हो चरणों में पाणिपल्लव कर संपुटित,
आँखों से जादू-सी फेरती,
उन्नत कुचकलशों को अंचल से ढकती-सी
लज्जा से छुई-मुई बनती सिकुड़ती-सी
बोली वीणा-वाणी में—

'अतिथि देव !
यौवन यह अर्पित पद-पद्म में है
इसको स्वीकार करो,
यह न तिरस्कार करो,
यौवन यह, रूप यह, जिसे प्राप्त करने को
यती यत्न करते, तपी तपते पंचाग्नि नित्य,
बड़े-बड़े चक्रवर्ति मुकुट विसर्जित कर

चाहते उधर का दान, चाहते भृकुटि का दान !
तप्त उर शीतल करो गाढ़ परिरंभण दे ।'

गौतम यह देखकर,
माया सब लेखकर,
चकित-से विस्मित-से भ्रमित-से, अवाक् से,
लगे देखने सभी लीला वासवदत्ता की,
रूप की,
यौवन की,
यौवन के आग्रह की,
प्राणों के कंपन की,
सिहरन की ।
शांत हो बोले साधु
'देवी, क्या कहती हो ?
सावधान हो के जरा सोचो तो
कहती क्या ?
किससे फिर ?
आज मैं अतिथि नहीं बनूँगा इस गृह में ।"

इतना कह
शान्त चित्त चले गये आर्यपुत्र
क्लान्तचित्त, भ्रान्त देह, श्रान्त बुद्धि लिये, पर, बैठी रही
वासवदत्ता मलीन,
फूट-फूट रोती रही अपने दुर्भाग्य पर
विनय पर, अनुनय पर, आग्रह-अनुरोध पर,
अपने दुर्बोध पर !
जलते उर मरुथल में एक था सहारा किन्तु,

गौतम थे कह गये
'आऊँगा देवि ! फिर
होगी जब कभी तुम्हें
मेरी टोह बाट में।

होती अधीर, पीर उर में समेटे सब
नयनों में नीर, वासवदत्ता भी शांत हुई ॥
बीते दिवस मास,
बीते पक्ष, वर्ष
बीते युग कितने ?
आज वह तरुणी नवीन
वृद्ध हो चली;
उसका शरीर आज जर्जर है दुर्बल है,
कोई नहीं पूछता कहाँ रहती है वह !
आज धूलि-धूसरित कलिका पड़ी है छिन्न !
भिन्न हैं सभी अभिन्न !
खिन्न चित्त को है नहीं पूछता कहीं भी कोई ॥
उड़ गये मधुप वे, जो कलिका में मधु देख
केसर औ' कुंकुम देख
रूप लुब्ध होकर प्रबुद्ध बड़े
आते इस ओर खिंचे;
तोड़ कर संबंध जाति का, कुल का, समाजका,
आज नहीं कोई कहीं आता है
दिखाई देता है।
उड़ गये, वैभव-विभव माणिक मणि
छाया-से माया-से !
आज वासवदना पड़ी है अनाथ !

साथ नहीं कोई;
उसका शरीर दुर्गंधित है
अंग-अंग सड़ रहा है आज
पीप पड़ गई है,
व्याधि उपजी है ऐसी कि आते नहीं वैद्य भी,
आँखें धँसी ऊर्ध्वश्वास,
मूर्छित-सी पड़ी है वह !

इतने ही में द्वार में धक्का लगा जोर से,
आया त्यों ही झोंका एक मलयानिल का भी
आया कुछ होश वासव दत्ता के चित्त में
बोली वासवदत्ता,
'कौन ?'
'मैं हूँ तथागत !
आज आया हूँ अतिथि बन'
करुणामय विलोक शोक-युक्त रमणी को,
काँप उठे करुणा से
पिघल उठे दुःख से।
गौतम ने अपने पुण्य पाणि से
फफोलों पर, छालो पर, घाव पर, पीप पर,
शीतल जल छिड़का,
निज हाथ से धोया उसे,
जी सी उठी मृत-हत वासवदत्ता तुरन्त,
देखने लगी सतृष्ण गौतम की मूर्ति को
सेवा की स्फूर्ति को।
बोले तथागत
'यह आया हूँ, आज देवि !

आज अनिवार्य्य था आना यहां मेरा यह !'
कंठ भर आया,
वासवदत्ता नत चरणों में
मस्तक धर
हृदय धर
जीवन धर
प्राण धर
जड़-सी बनी बैठी वहीं,
बोल कुछ पाई नहीं;
अर्चना अचल बनी,
वंदना सफल बनी,
हो गई मौन, कह पाई कुछ बात नहीं !

युगावतार गाँधी

चल पड़े जिधर दो डग मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि;
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर;

जिसके सिर पर निज धरा हाथ,
उसके सिर - रक्षक कोटि हाथ
जिस पर निज मस्तक झुका दिया,
झुक गये उसी पर कोटि माथ;

हे कोटि चरण ! हे कोटि बाहु !
हे कोटि रूप ! हे कोटि नाम !
तुम एक मूर्ति, प्रति मूर्ति कोटि,
हे कोटि मूर्ति ! तुमको प्रणाम !

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख,
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख;
तुम अचल मेखला बन भू की,
खींचते काल पर अमिट रेख,

तुम बोल उठे, युग बोल उठा,
तुम मौन रहे, युग मौन बना;
कुछ कर्म तुम्हारे कर संचित,
युग-कर्म जगा, युग-धर्म तना

युग - परिवर्तक ! युग - संस्थापक !
युग - संचालक ! हे युगाधार !
युग - निर्माता - युग - मूर्ति ! तुम्हें,
युग - युग तक युग का नमस्कार !

भगवती चरण वर्मा

भैंसागाड़ी

(१)

चरमर - चरमर - चूँ - चरर - मरर
आ रही चली भैंसा गाड़ी !

गति के पागलपन से प्रेरित
चलती रहती संसृति महान !
सागर पर चलते हैं जहाज,
चलते वायुयान !

भूतल के कोने कोने में
रेलों ट्रामों का जाल बिछा,
हैं दौड़ रही मोटरें बसें,
लेकर मानव का बृहत् ज्ञान !

पर इस प्रदेश में, जहाँ नहीं
उच्छ्वास भावनाएँ चाहे,
वे भूखे अधखाये किसान
भर रहे जहाँ सूनी आहें !

नंगे बच्चे, चिथड़े पहने
माताएँ जर्जर डोल रहीं,
है जहाँ विवशता नृत्य कर रही,
धूल उड़ाती हैं राहें।

बीते युग की परछाईं-सी
बीते युग का इतिहास लिये;
'कल' के उन तंद्रिल सपनों में
'अब' का निर्दय उपहास लिये !

गति में किन सदियों की जड़ता ?
मन में किस स्थिरता की ममता ?
अपनी जर्जरसी छाती में
अपना जर्जर विश्वास लिये !

भर भर कर फिर मिटने का स्वर,
कँप-कँप उठते जिसके स्तर स्तर,
हिलती - डुलती, हँफती - कँपती,
कुछ रुक-रुक कर कुछ सिहर-सिहर,

चरमर चरमर चूँ - चरर - मरर
जा रही चली भैंसा गाड़ी !

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे,
कुछ पाँच कोस की दूरी पर,
भू की छाती पर फोड़ों - से
हैं उठे हुये कुछ कच्चे घर !

मैं कहता हूँ खंडहर उसको
पर वे कहते हैं उसे ग्राम,
जिसमें भर देती निज धुँधलापन
असफलता की सुबह-शाम।

पशु बन कर नर पिस रहे जहाँ
नारियाँ जन रही हैं गुलाम,
पैदा होना फिर मर जाना,
बस यह लोगों का एक काम!

या कहीं कटा दो दिन पहिले
गेहूँ का छोटा एक खेत!

तुम सुख-सुषमा के लाल, तुम्हारा
है विशाल वैभव विवेक,
तुमने देखी है मान भरी
उच्छृङ्खल सुन्दरियाँ अनेक,

तुम भरे-पुरे, तुम हृष्ट-पुष्ट,
ऐ तुम समर्थ कर्ता-हर्ता!
तुमने देखा है क्या बोलो
हिलता-डुलता कंकाल एक?

यह था उसका ही खेत, जिसे
उसने उन पिछले चार माह
अपने शोणित को सुखा सुखा
भर भर कर अपनी विवश आह!

तैयार किया था और घर में
थी रही रुग्न पत्नी कराह!

उसके वे बच्चे तीन, जिन्हें
माँ-बाप का मिला प्यार न था,
जो थे जीवन के व्यंग,
जिन्हें मरने का भी अधिकार न था।

थे क्षुधा ग्रस्त बिल बिला रहे
मानो वे मोरी के कीड़े,
वे निपट घिनौने महापतित
बौने, कुरूप, टेढ़े मेढ़े।

उसका कुटुम्ब था भरा-पुराः—
आहों से हाहाकारों से,
फाकों से लड़-लड़ प्रति दिन
घुट-घुट कर अत्याचारों से!

तैयार किया था उसने ही
अपना छोटा-सा एक खेत!

बीबी बच्चों से छीन, बीन
दाना-दाना अपने में भर,
भूखें तड़पें या मरें, भरों
का तो भरना है उसको घर,

धन की दानवता से पीड़ित
कुछ फटा हुआ, कुछ कर्कश स्वर,

चरमर, चरमर · चूँ - चरर - मरर
जा रही चली भैंसा गाड़ी।

है बीस कोस पर एक नगर,
उस एक नगर में एक हाट,
जिसमें मानव की दानवता
फैलाये है निज राज - पाट !

साहूकारों के परदे में
है जहाँ चोर औ गिरह कट,
है अभिशापों से लदा जहाँ
पशुता का कलुषित ठाट-बाट !

उसमें चाँदी के टुकड़ों के
बदले में लुटता है अनाज,
उन चाँदी के ही टुकड़ों से
तो चलता है सब राज - काज !

वह राज-काज जो सधा हुआ
है इन भूखे कंकालों पर,
इन साम्राज्यों की नींव पड़ी
है तिल - तिल मिटने वालों पर !

वे व्यौपारी, वे जमींदार,
वे हैं लक्ष्मी के परम भक्त,
वे निपट निरामिष सूद खोर
पीते मनुष्य का आज रक्त !

इस राज काज के वही स्तंभ
उनको पृथ्वी, उनका ही धन;
थे ऐश और आराम उन्हीं के
और उन्हीं के स्वर्ग सदन!

इस बड़े नगर का राग रङ्ग
हँस रहा निरन्तर पागल - सा,
उस पागलपन से ही पीड़ित
कर रहे ग्राम अविकल क्रंदन!

चाँदी के टुकड़ों मे विलास
है चाँदी के टुकड़ों में बल,
इन चाँदी के ही टुकड़ों में
सब धर्म-कर्म सब चहल-पहल,

इन चाँदी के ही टुकड़ो में
है मानव का अस्तित्व विकल!
चाँदी के टुकड़ों को लेने
प्रति दिन पिस कर, भूखों मर कर,

भैंसा गाड़ी पर लदा हुआ,
जा चला रहा मानव जर्जर!

है उसे चुकाना सूद, कर्ज,
है उसे चुकाना अपना कर!
जितना खाली है उसका घर
उतना खाली उसका अंतर!

नीचे चलनेवाली पृथ्वी,
ऊपर जलनेवाला अंबर !
'औ' कठिन भूख की जलन लिये
नर बैठा है बनकर पत्थर !

पीछे है पशुता का खँडहर,
दानवता का सामने नगर,
मानव का कृश कंकाल लिये

चरमर - चरमर - चूँ · चरर-मरर
जा रही चली भैंसा गाड़ी !

—:o:—

राम कुमार वर्मा

झरना

अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर !
इस एकान्त प्रान्त - प्राङ्गण में,
किसे सुनाते सुमधुर स्वर ?
अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर !

अपना ऊँचा स्थान त्याग कर,
क्यो करते हो अधःपतन ?
कौन तुम्हारा वह प्रेमी है, .
जिसे खोजते हो वन वन ?

विरह-व्यथा में अश्रु बहाकर,
जलमय कर डाला सब तन !
क्या धोने को चले स्वयं,
अविदित प्रेमी के पद-रज-कन ?

लघु पाषाणों के टुकड़े भी,
तुमको देते हैं ठोकर,
क्षण भी ही ! विचलित होकर,
कम्पित होते हो गति खोकर।

लघु लहरों के कम्पित कर से,
करते उत्सुक आलिंगन।
कौन तुम्हें पथ बतलाता है,
मौन खड़े हैं सब तरुगन ?

अविचल चल, जल का छल छल,
गिरि पर गिर-गिर कर कल-कल स्वर !
पल पल में प्रेमी के मन में
गूँजे ए कातर निर्झर ?

अरे निर्जर वन के निर्मल निर्झर ?

यह गजरे तारों वाले

इस सोते संसार बीच
जग कर, सज कर रजनीवाले ?
कहाँ बेचने ले जाती हो
ये गजरे तारों वाले ?

मोल करेगा कौन !
सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी,
मत कुम्लहाने दो,
सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी,

निर्झर के निर्मल जल में
ये गजरे हिला-हिला धोना,
लहर हहर कर यदि चूमे तो
किंचित विचलित मत होना;

होने दो प्रतिबिम्ब-विचुम्बित,
लहरों में ही लहराना,
'लो मेरे तारों के गजरे',
निर्भय स्वर में यह गाना;
यदि प्रभात तक कोई आकर
तुमसे हाय! न मोल करे,
तो फूलों पर ओस-रूप में
बिखरा देना सब गजरे।

संकेत

सुख न इस संसार में वह है
दुखों की एक विस्मृति।
मध्य में है एक क्षण—इस ओर अथ
उस ओर है इति॥
यह उषा का रंग, चंचल बादलों की भूमि का है।
और बादल—उमड़ता उच्छ्वास मेरी भूमि का है॥
जो मुझे प्रति पल बदलती है, न है
वह अमर संसृति।
सुख न इस संसार में—वह है
दुखों की एक विस्मृति॥
भावनाओं में उभरने का अधिक से अधिक प्रण था।
किन्तु देखा विश्व में मैंने कि मैं लघु एक कण था॥
पर अमर बन कर रहेगी
विश्व में मेरी कलाकृति
सुख न है संसार में—वह है
दुखों की एक विस्मृति

पं० श्यामनारायण पाण्डेय

हल्दी घाटी

सावन का हरित प्रभात रहा, अम्बर पर थी घनघोर घटा।
फहराकर पङ्ख थिरकते थे, मन हरती थी वन मोर छटा॥

पड़ रही फुही झीसी झिर्नझिन, पर्वत की हरी वनाली पर।
'पी कहाँ' पपीहा बोल रहा, तरु तरु की डाली डाली पर॥

वारिद के उर में चमक-दमक, तड़-तड़ थी बिजली तड़क रही।
रह रहकर जल था बरस रहा, रणधीर भुजा थी फड़क रही॥

धरती की प्यास बुझाने को, वह घहर रही थी घन-सेना।
लोहू पीने के लिए खड़ी, यह हहर रही थी जन-सेना।

नभ पर चमचम चपला चमकी, चम चम चमकी तलवार इधर।
भैरव अमन्द घन-नाद उधर, दोनों दल की ललकार इधर॥

वह कड़-कड़कड़-कड़ कड़क उठी, यह भीमनाद से तड़क उठी।
भीषण संगर की आग प्रबल, बैरी सेना में भड़क उठी॥

डग-डग डग-डग रण के डंके, मारू के साथ भयद बाजे।
टप - टप - टप घोड़े कूद पड़े, कट कट मतंग के रद बाजे॥

कल-कल कर उठी मुगल सेना, किलकार उठी ललकार उठी।
असिम्यान-विवर से निकल तुरत, अहि-नागिन सी फुफकार उठी॥

फर-फर फर-फर-फर फहर उठा, अकबर का अभिमानी निशान।
बढ़ चला कटक लेकर अपार, मद मस्त द्विरद पर मस्त मान॥

कोलाहल पर कोलाहल सुन, शस्त्रों की सुन झनकार प्रबल।
मेवाड़ केसरी गरज उठा, सुनकर अरि की ललकार प्रबल ॥

हर एक लिंग को माथ नवा, लोहा लेने चल पड़ा वीर।
चेतक का चंचल वेग देख, था महा महा लज्जित समीर ॥

लड़ लड़ कर अखिल महीतल को, शोणित से भर देने वाली।
तलवार वीर की तड़प उठी, अरि कण्ठ कतर देनेवाली ॥

राणा का ओज भरा आनन, सूरज समान चमचमा उठा।
बन महाकाल का महाकाल, भीषण भाला दमदमा उठा ॥

भेरी प्रताप की बजी तुरत, बज चले दमामे धमर धमर।
धम धम रण के बाजे बजे, बज चले नगारे घमर-घमर ॥

कुछ घोड़े पर कुछ हाथी पर, कुछ योद्धा पैदल ही धाये।
कुछ ले बरछे कुछ ले भाले, कुछ शर से तरकस भर लाये ॥

रण यात्रा करते ही बोले, राणा की जय राणा की जय ॥
मेवाड़ सिपाही बोल उठे, शतबार महा राणा की जय।

हल्दीघाटी के रण की जय, राणा प्रताप के प्रण की जय।
जय जय भारतमाता की जय, मेवाड़-देश-कण-कण की जय ॥

हर एक लिंग हर एक लिंग, बोला हर हर अम्बर अनत।
हिल गया अचल भर गया तुरत, हर हर निनाद से दिग दिगन्त।

घन घोर घटा के बीच चमक, तड़ तड़ नभ पर तड़िता तड़की।
झनझन असिकी झनकार इधर, कायर दल की छाती धड़की ॥

अब देर न थी बैरी वन में, दावानल के सम छूट पड़े।
इस तरह वीर झपटे उन पर, मानों हरि मृग पर टूट पड़े ॥

हाथी सवार हाथी पर थे, बाजी सवार बाजी पर थे।
पर उनके शोणित मय मस्तक, अवनी पर मृत-राजी पर थे ॥

कर की असि ने आगे बढ़कर, संगर - मतंग-सिर काट दिया।
बाजी वक्षःस्थल गोभ गोभ, बरछी ने भूतल पाट दिया॥

गज गिरा मरा पिलवान गिरा, हय कटकर गिरा निशान गिरा॥
कोई लड़ता उत्तान गिरा, कोई लड़कर बलवान गिरा॥

झटके से शूल गिरा भू पर, बोला यह, मेरा शूल कहाँ।
शोणित का नाला बह निकला, अवली-अम्बर पर धूल कहाँ॥

कोई करता था रक्त-वमन, छिद गया किसी मानव का तन।
कट गया किसी का एक बाहु, कोई था सायक-विद्ध नयन॥

तो भी रख प्राण हथेली पर, बैरी दल पर चढ़ते ही थे।
मरते कटते मिटते भी थे, पर राजपूत बढ़ते ही थे॥

राणा प्रताप का ताप तचा, अरि दल में हाहाकार मचा।
भेड़ों की तरह भगे कहते, 'अल्लाह हमारी जान बचा'॥

आगे थी अगम बनास नदी, वर्षा से उसकी प्रखर धार।
थी बुला रही उनको शत शत, लहरों के कर से बार बार॥

पहिले सरिता को देख डरे, फिर कूद कूद उस पार भगे।
कितने बह बह इस पार लगे, कितने बह कर उस पार लगे॥

मझधार तैरते थे कितने, कितने जल पी पी ऊब मरे।
लहरों के कोड़े खा-खाकर, कितने पानी में डूब मरे॥

राणा-दल की ललकार देख, अपनी सेना की हार देख।
सातङ्क चकित रह गया मान, राणा प्रताप के वार देख॥

व्याकुल होकर वह बोल उठा—"लौटो लौटो न भगो भागो।
मेवाड़ उड़ा दो तोप लगा, ठहरो, ठहरो फिर से जागो"॥

और लगी बरसने आग सतत, उन भीम भयंकर तोपों से।
जल-जल कर राख लगे होने योधा उन मुग़ल-प्रकोपों से॥

विकराल गरजती तोपों से, रूई सी क्षण क्षण धुनी गई।
उस महायज्ञ में आहुति-सी राणा की सेना हुनी गई॥

राणा दल का यह प्रलय देख, भीषण भाला दमदमा उठा।
जल उठा वीर का रोम रोम, लोहित आनन तमतमा उठा॥

बोला, "आगे बढ़ चलो शेर, मत क्षण भर भी अब करो देर॥
क्या देख रहे हो मेरा मुख? तोपों के मुँह दो अभी फेर॥

बन गये वीर मतवाले थे, आगे वे बढ़ते चले गये।
'राणा प्रताप की जय' करते, तोपों तक चढ़ते चले गये॥

फिर महा समर छिड़ गया तुरत, लोहू-लोहित हथियारों से।
फिर होने लगे प्रहारवार, बरछे-भाले-तलवारों से॥

शोणित से लथपथ ढालों से, करके कुन्तल करवालों से।
खर-छुरी-कटारी फालों से, भू भरी भयानक भालों से॥

राणा की तलवार

चढ़ चेतक पर तलवार उठा,
रखता था भूतल-पानी को;
राणा प्रताप सिर काट-काट,
करता था सफल जवानी को;

कल कल बहती थी रण-गङ्गा,
अरिदल को डूब नहाने को;
तलवार वीर की नाव बनी,
चटपट उस पार लगाने को;

वैरी-दल को ललकार गिरी,
वह नागिन सी फुफकार गिरी;

था शोर-मौत से बचो! बचो!
"तलवार गिरी! तलवार गिरी!,,

पैदल से हय-दल, गज-दल में,
छप-छप करती वह निकल गई;
क्षण कहाँ गई कुछ पता न फिर,
देखो चम-चम वह निकल गई,

क्षण इधर गई, क्षण उधर गई,
क्षण चढ़ी बाढ़ सी उतर गई,
था प्रलय चमकती जिधर गई,
क्षण शोर हो गया, 'किधर गई?

क्या अजब विषैली नागिन थी,
जिसके डसने में लहर नहीं,
उतरी तन से मिट गये वीर,
फैला शरीर में जहर नहीं।

थी छूरी कहीं तलवार कहीं,
वह बरछी-असि, खरधार कहीं,
वह आग कहीं, अंगार कहीं,—
बिजली थी कहीं, कटार कहीं,

लहराती थी सिर काट-काट,
बल खाती थी भू पाट-पाट,
बिखराती अवयव बाट-बाट,
तनती थी लोहू चाट-चाट,

क्षण भीषण हलचल मचा-मचा,
राणा,कर की तलवार बढ़ी,
था शोर रक्त पीने को यह,
रण चंडी जीभ पसार बढ़ी।

—:o:—

हरिवंश राय बच्चन

आशे !

(१)

भूल तब जाता दुख अनन्त ,
निराशा पतझड़ का हो अन्त
हृदय में छाता पुनः बसंत ,

दमक उठता मेरा मुख म्लान ,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

(२)

पथिक जो बैठा हिम्मत हार ,
जिसे लगता था जीवन भार ,
कमर कसता होता तैय्यार ,

पुनः उठता करता प्रस्थान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

(३)

डूबते पा जाता आधार ,
सरस होता जीवन निस्सार ,
सार-मय फिर होता संसार ,

सरल हो जाते कार्य्य महान ,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

(४)

शक्ति का फिर होता संचार ,
सूझ पड़ता फिर कुछ कुछ पार ,
हाथ में फिर लेता पतवार ,

पुनः खेता जीवन जलयान ,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

मधुशाला

धर्म ग्रन्थ सब जला चुकी है
जिसके अन्तर की ज्वाला ,
मंदिर , मस्जिद , गिरजे सब को
तोड़ चुका जो मतवाला ,

पंडित , मोमिन , पादरियों के
फंदों को जो काट चुका ,

कर सकती है आज उसी का
स्वागत मेरी मधुशाला ।

(२)

बने पुजारी प्रेमी साकी
गंगाजल , पावन हाला ,
रहे फेरता अविरत गति से
मधु के प्यालों की माला ,

'और लिये जा और पियेजा'
इसी मंत्र का जाप करे

मैं शिव की प्रतिमा बन बैठूं,
मंदिर हो यह मधुशाला।

(३)

एक बरस में एक बार ही
जगती होली की ज्वाला,
एक बार ही लगती बाजी,
जलती दीपों की माला;

दुनिया वालो, किन्तु, किसी दिन
आ मदिरालय में देखो,

दिन को होली रात दिवाली,
रोज़ मनाती मधुशाला।

(४)

बनी रहें अंगूर लताएँ
जिनसे मिलती है हाला,
बनी रहे वह मिट्टी जिससे
बनता है मधु का प्याला,

बनी रहे वह मदिर पिपासा
तृप्त न जो होना जाने,

बने रहें ये पीने वाले,
बनी रहे यह मधुशाला।

(५)

सजें न मस्जिद और नमाजी,
कहता है अल्ला ताला,
सजधज, पर, साक़ी आता,
बन ठन कर पीने वाला,

शेख कहाँ तुलना हो सकती
मस्जिद की मदिरालय से,

चिर विधवा है मस्जिद तेरी,
सदा - सुहागिन मधुशाला।

(६)

मुसलमान औ हिन्दू हैं दो
एक, मगर, उनका प्याला,
एक, मगर उनका मदिरालय,
एक, मगर, उनकी हाला,

दोनों रहते एक न जब तक
मस्जिद मन्दिर में जाते,

लड़वाते हैं मस्जिद - मन्दिर,
मेल कराती मधुशाला।

—:०:—

बंगाल का काल

उठो अन्न के लिये लड़ो तुम ,
उठो धर्म के लिए लड़ो तुम ,
उठो वहां के लिए लड़ो तुम ,
ओ ऋषियों को अपना पूर्वज
कहने वालो ,
उठो आज अपनी सत्ता के
मूल केन्द्र की रक्षा के हित
निकल पड़ो तुम ,
विकल बनो तुम ।

वरसाइया बहुत हैं अब भी ,
शायद क्रूर-कठिन पहले से ,
बरसाएँगी तुम पर गोली
और तुम्हें मरना भी होगा ।
लेकिन इतना निश्चित जानो
मरकर ही तुम जी पावोगे ,
जीने से तुम मर जाओगे ।

अपने अधिकारों पर लड़ते
अगर मरे तुम खून तुम्हारा
कवि की कलमों से लिख देगा
अमर कथा वह बलिदानों की

जिसको पढ़कर, जिसको सुनकर
मुर्दों में जीवन आएगा
ज़िंदों में यौवन आएगा।

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम
नहीं गुलाम देवताओं के
और न उनके दया पात्र ही,
और न उनके ऊपर निर्भर
तुम्हें आत्म-अवलंब चाहिए!

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम,
औरन मानवी अधिकारों पर
जब कि खड़े होगे तुम डटकर
कोई शक्ति नहीं ऐसी जो
तुम्हें हटा दे तिल भर पीछे,
तुम्हें आत्म विश्वास चाहिये!

और खरीदे कभी नहीं ये
जा सकते सोने—चाँदी से।
मेरे पैसे या दो पैसे
किस मसरफ के तुमको होते,
इसीलिए यह अपनी वाणी
तुम्हें भेजता हूँ चन्दे में,
संभव है तुमको कुछ बल दे,
और कालिका करे प्रेरणा,
निकल पड़ो तुम सहसा कहकर—
अपनी रोटी अपना राज
इन्कलाब जिन्दाबाद।

निशा-निमंत्रण

(१)

दिन जल्दी - जल्दी ढलता है।
हो जाय न पथ में रात कहीं,
मंजिल तो भी है दूर नहीं—
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी जल्दी चलता है।
दिन जल्दी जल्दी ढलता है।

(२)

बच्चे प्रत्याशा में होंगे
नीड़ों से झाँक रहे होंगे—
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरती कितनी चंचलता है?
दिन जल्दी जल्दी ढलता है।

(३)

मुझसे मिलने को कौन विकल?
मैं होऊँ किसके हित चंचल?
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है।
दिन जल्दी जल्दी ढलता है।

—:०:—

मोहनलाल महतो 'वियोगी'

आर्य्यावर्त्त से पृथ्वीराज की शब्द भेद विद्या

लटक रहे हैं तवे सात एक बुर्ज में,
एक दूसरे के पीछे, लोहे की जंजीरों से।

एक ऊँचा आसन बिछा है रंग भूमि के,
ठीक बीचो बीच—वहीं पृथ्वीराज बैठेंगे।

सामने धरी है भीम धन्वा और साथ ही,
विशिख धरे हैं कई उत्तम फलक के।

जन श्रोत आ रहा है जैसे उमड़ी हुई,
सागर की ओर चली सावन की सरिता।

आया गज लेके महाराज पृथ्वीराज को,
हो गये खड़े वे वहीं, जो-जो जहाँ बैठे थे।

गोरी भी हठात् अनजानते खड़ा हुआ,
बैठ गया लज्जित हो फिर तत्काल ही।

ऐसा व्यक्तित्व का प्रभाव था नरेन्द्र के,
हर्ष-ध्वनि छा गयी-अधीर हुई जनता।

भीड़ को सँभालना असंभव था सेना को,
आये तब शाह जी प्रशांत धीर गति से।

कम्बल लपेटे और प्रभु नाम जपते,
आसन से उतर स्वयम् सुलतान ने।

सादर झुकाया शीश, टेक कर घुटने,
और कहा—"गुरुदेव, हम कृत्य-कृत्य हैं।
पदरज पाके—आप मंच पर बैठिये।"
बोले शाह—यों तो नहीं जाता किसी घर में,
किन्तु मैं बँधा हूँ, सुलतान के सनेह से।
उचित यही है आप अपनी जगह पर,
बैठें वह आसन तो आपके ही योग्य है।
रमता फकीर हूँ, न मान अपमान की,
चिंता मुझे—मेरी सभी लालसायें तृप्त हैं।
आसन ग्रहण करें आप, जरा घूम के,
देखूँगा—थकूँगा तो कहीं भी बैठ जाऊँगा।
"आज्ञा शिरोधार्य है" कहा यों सुलतान ने,
शाह लगे रंगशाला घूमकर देखने।
खोलकर बन्धन, सयत्न महाराज को,
हाथी से उतारा गया, फिर बाँह धरके।
उनको बिठाया गया मंच पर धीरे से।
शाह आये घूमकर और महाराज से
बोले शुद्ध प्राकृत में—"अब सावधान हो
लक्ष्य भेद कीजियेगा; दाहिनी तरफ ही,
बलिपशु बैठा है, न चूकियेगा फिर से।
एक बार चूके तो विनाश हुआ देश का,
इस बार चूके तो कुगति होगी देह की।"
बोले महाराज—"महाचंडी का भरोसा है,
धो दूंगा कलंक एक बाण से स्वदेश का।"

घोषणा की मंत्री ने खड़ा हो, उच्च स्वर में।
"शान्ति ! आप देखिये, ये पृथ्वीराज बैठे हैं
जीत कर युद्ध में हमारे सुलतान ने,
बन्दी बना लाया इन्हें—अब आप देखेंगे,
कैसा बलवान है हमारा शत्रु, युद्ध में
हमने हराया जिसे, आपकी मदद से।
सहज नहीं था इस शेर का पकड़ना
घुस कर माँद में जो एक ही तमाचे से
चूर कर डालता है मस्तक गयंद का।
थे ये सम्राट कभी काफिरों के देश के,
किंतु आज कैदी हैं हमारे वीर राष्ट्र के।
सामने टंगे हैं तवे, सात-सात लोहे के
एक-एक मन भारी—एक बाण मार के
तोड़ देंगे राजा इस वीरता को देखिये।
अंधे हैं, परन्तु शब्द वेधी बाण मारेंगे
सावधान होके आप देखें इस खेल को।"
जल उठी छाती सुन बातें अपमान की
किंतु शान्त बैठे रहे राजा मन मार के।
चुप हुआ मन्त्री तब खुद सुलतान ने
आज्ञा दी-"धनुष बाण देदो महाराज को।"
पाते ही घृताहुति हठात् पूर्ण वेग से,
जिस भाँति जागती हैं सर्वभुक, ज्वालायें,
बिज्जु-सी तड़प उठती हैं, महाराज भी,
सहसा खड़े हुये धनुष लेते हाथ में।
खौल उठा आर्य रक्त भौंहें बंक हो गईं,
पीछे हटे प्रहरी सशंक गोरी हो गया।

दर्शक सभीत हुये, चीख उठीं वेग में,
भयभीत बच्चे छिपे आँचल में माता के।
एक बार सिंह सा दहाड़ महाबाहु ने
वेग से झुका दिया प्रचंड कोदंड को,
प्रत्यंचा चढ़ाते वह टूट गया बीच से।
देख बल विक्रम अवाक् हुये दर्शक,
"दूसरा धनुष दो,—पुकार कहा शाह ने।
इस भाँति आये कई धनुष परंतु वे
टूट गये सब वज्र मुष्टियों में पड़के।
सोचकर बोला सुलतान—"साथ अपने
लाया था धनुष एक, राजा जयचन्द से।
भेंट में मिला था, आज तक किसी योद्धा ने।
प्रत्यंचा चढ़ाई नहीं उस कोदंड की।
ला दो वही"—दौड़ पड़े सेवक तुरन्त ही
आया महाचाप मानो चाप हो सुरेन्द्र का,
रत्नमय, सुन्दर, सुदीर्घ, शुभ दर्शन।
लेते ही तुरन्त पहचान लिया वीर ने,
बार बार चूम के लगा लिया हृदय से
मानो मिला कोई देश बन्धु दूर देश में।
प्रत्यंचा चढ़ा के, एक बार टंकार के,
बोले आर्य पुत्र—"मुझे बाण अब चाहिए
अच्छे फौलाद के दो—और एक कंकड़ी
मार दो तवे पर—करूँगा लक्ष्य भेद मैं।"
भीषण फलक वाले बाण दो नरेंद्र को
चुनकर शाह ने स्वयं दिये हँस के,
और कहा—"आर्यपुत्र, बस क्षण भर में

धुल जाता है पाप-पंक आर्य जाति का।
अचल सोहाग होग। आज महारानी का,
राज्य हो अचल आर्यपुत्र रैनसी का,
यश दें भवानी कवि जल्ह को, सुखी हुआ
आज मैं, समस्त परिताप मिटा मन का।
सावधान होके शब्द वेधी बाण मारिये,
मैं हूँ खड़ा आपके ही पार्श्व में—ये बाण हैं।"
ले के बाण पैंतरे बदल महाबाहु ने
ध्यान किया केंद्रित, सतर्क किया कानों को
मारी गई ककड़ी—तवे से झंकार का
शब्द गूंजा, घूमकर, तत्काल वीर ने
मारा बाण, खींचकर कान तक धन्वा को,
सातों तवे टूटे तड़ातड़ एक साथ ही
खुल गये सातों द्वार ऊर्ध्व सप्त-लोक के
चीख उठा गोरी तब उल्लसित कण्ठ से
'वाह-वाह,' और सुन शब्द "वाह-वाह"का,
मारा बाण दूसरा नरेन्द्र ने पलट के,
छिद गया कंठ गोरी का, वह मंच से
प्राण हीन होके गिरा—हाहाकार छा गया।
बाण चला वेधता अनेक हत भागों को,
फिर घुसा तोड़ कर बज्र दीवार में,
लोहे और पत्थर के घोर संघर्ष से
आग के भभूके यहाँ निकले भभकते।
"जय हो आर्यभूमि की"—दहाड़ उठे शाहजी,
कांड-ज्ञान-शून्य भागे दर्शक विकल हो।
भाग चले मंत्री, भगी भीत सेना चीखती,

खूंद दिये टाप से भड़ककर घोड़ों ने
भागते हुओं को—दुर्ग-रक्षक ने दुर्ग के
बन्द किये द्वार, गति देख नहीं दूसरी;
कूद पड़े कुछ दर्शक परकोटे से,
डूब मरे खाई के विषाक्त गंदे जल में;
खा लिया पकड़कर अनेकों को नक्र ने।
होके क्रुद्ध मत्त गज, इस उत्पात से,
टूट पड़ा भीड़ पर, व्यग्र चिग्घाड़ता,
दुर्ग लगा काँपने—प्रलय-कांड हो गया।
बोला कवि चंद "शत्रु मारा गया; लीजिये,
यह तलवार है, प्रहार करें मुझ पर,
और मैं प्रहार करूँ आप पर" कवि ने
बाहर निकाले दो कृपाण, फेंक कम्बल।
चमक उठीं दो क्षणदायें क्षण भर में,
नीचे गिरे दोनों वीर कटकर साथ ही।
रक्त से ही धुल सकती है—और धोते हैं
माता के सपूत वीर कालिमा गुलामी की।

—:o:—

जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

सती सुलोचना

(१)

श्वास की अहर्निश समीर शीत उष्ण द्वारा,
पद्मों का पराग सानुराग ले लगाती है।
सन्ध्या की, उषा की साड़ियों से नये साज साजे,
किरणावली से दिव्य द्युति दरसाती है।
फेर फेर फेन का "मिलिन्द" श्वेत अंचल त्यों,
सिन्धु का विलोकनीय नीर लहराती है।
मानों रीझि छवि पै, प्रकृति हो मगन मन,
प्रीतम गगन को ले आरसी दिखाती है॥

(२)

प्याला हेम का है नीलमो की जड़ी चौकी पै, या,
भानुजा में शतपत्र पंकजों की माला है,
अथवा उमंडित सजल नीले नीरदों में,
होकर अचंचल विराजी विज्जु बाला है।
पीत पट किंवा अंग श्याम के सुशोभित या,
पुष्प अतसी पै स्वर्ण-कीट मतवाला है।

शीश पै नदीश के पुरी है दस शीश की या,
नीले व्योम-मध्य रजनीश का उजाला है ॥

(३)

लालों से जटित राजमहल खड़े हैं या कि,
अरुण पलाश-राशि फूली आस-पास है,
चारों ओर सुख का समीर डोलता है नित्य,
वीरता सरस फैली यश की सुवास है।
हेम के कँगूरे मानों मंजरी रसाल की है,
मदन महीपति यहाँ का बना दास है।
मुदित पिकी-सी प्रमदाएँ कूकती हैं मञ्जु,
रावण-पुरी है, या वसन्त का विकास है ॥

(४)

मंगल कलश महलों पै स्वर्ण-मण्डित है,
जिन पै समुन्नत ध्वजाएँ रहीं राज हैं।
रक्षा करने के लिये द्वारों पै नियुक्त जहाँ,
साज है सुरों के, असुरों के भी समाज हैं।
मन्दिर महान इन्द्रजीत का विचित्र अति,
रावणपुरी के यों अनोखे ठाट आज हैं।
अलका सशंकित है जिसकी महत्ता देख,
सत्ता देख लज्जित, भ्रमित देवराज हैं ॥

(५)

"पति देव आज हैं हमारे समराङ्गण में,
युद्ध में विनाश का अपार घन है घिरा।

जीत चुके इन्द्र को प्रतीति है हिये में तो भी,
आज क्यों ? न जाने यों सजनि ! चित्त है फिरा"।
पूछती थी विकल सखी से बार बार इमि,
सुमुखि सुलोचना सभीता भ्रान्त अस्थिरा।
सहसा वहीं पै बाण - विद्ध रक्त - रंजिताभ,
आकर प्रबल कर मेघनाद का गिरा॥

(६)

व्यर्थ सा हुआ है विश्व आज अबला के लिये,
पार करने को शोक-सागर अपार है।
जीवन-तरणि डगमग डोलती है मेरी,
छा रहा निराशा का अभेद्य अन्धकार है।
दैव के प्रकोप की तरंगें उठतीं अनेक,
भय के प्रबल झंझावात का प्रहार है।
आज मझधार में अकेली मैं पड़ी हूँ नाथ,
आपकी भुजा ही एक मेरी पतवार है॥

(७)

पति की भुजा को उठा अपने करों से फिर,
आके युद्ध भूमि में विलाप करने लगी।
मस्तक झुका के रघुनाथ के पदाम्बुजों में,
शोक उर - अन्तर अमाय करने लगी।
बोली 'हे दया के सिन्धु !' निष्ठुर बने क्यों आज,
बावली-सी व्याकुल प्रलाप करने लगी।
"'छीन क्यों ? लिया है देव ! मुझसे सुहाग मेरा,
मैं थी कौन ऐसा महापाप करने लगी ?"

(८)

सजल विलोचन हो बोले शोकमोचन यों,
"तू कहे सुलोचने तो इसको जिला दूँ मैं।
मृतक पड़ा है छिन्न - भिन्न जो रण - स्थल में,
उसको सुपद अमरत्व का दिला दूँ मैं।
रहता सदैव वशीभूत भक्तजन के मैं,
तेरा मुरझाया भाग्य - कमल खिला दूँ मैं।
शान्ति - सुख ला दूँ फिर तेरे दुखी जीवन में,
तुझ - सी सती को तेरे पति से मिला दूँ मैं" ॥

(९)

किन्तु जब शीश ने न स्वीकृति प्रगट की तो,
शीघ्र ही सुलोचना ने मोह बिसरा दिया।
भक्ति से सँभाल तन पति का पतिव्रता ने,
चट के चिता पै निज तन को जला दिया।
करुणानिधान ने अमल छवि दे के उन्हें,
फिर स्वर्ग आगत विमान पै बिठा दिया।
करके अशोक मुक्ति - पद दे दया से उन्हें,
मृत्यु - लोक से ले निज लोक पहुँचा दिया ॥

—:०:—

नरेंद्र शर्मा

प्रयाग

मैं बन्दी बन्दी मधुप, गीत यह गुंजित मम स्नेहानुराग,
संगम की गोदी में पोषित शोभित तू शतदलयुत, प्रयाग।
विधि की बाँहें गंगा-यमुना तेरे सुवक्ष पर कंठ हार
लहराती आतीं गिरि-पथ से लहरों में भर शोभा अपार!

देखा करता हूँ गंगा में उगता गुलाब-सा अरुण प्रात
यमुना की नीली लहरों में नहला तन, उठती नित्य रात!
गंगा-यमुना की लहरों में, कण कण में मणि नयनाभिराम।
बिखरा देती है साँझ हुए नारंगी-रंग की शान्त शाम।

तेरे प्रसाद के लिए, तीर्थ! आते थे दानी हर्ष जहाँ,
पल्लव के रुचिर किरीट पहन आता अब भी ऋतु राज वहाँ;
कर दैन्य-दुख-हेमन्त अन्त, वैभव से भर सब शुष्क वृन्त
हर साल हर्ष के ही समान सुख-हर्ष-पुष्प लाता बसन्त!

स्वर्णिम मयूर-से नृत्य किया करते उपवन में गोल्ड मोहर,
कुहका करती पिक छिप-छिप कर तरुओं में रत प्रत्येक पहर!
भर जाती मीठे सौरभ से कड़वे नीमों की डाल डाल
चल दल पर लद जाते असंख्य नव दल-प्रवाल के जाल लाल!

'मधु आया' कहते हँस प्रसून, पल्लव 'हाँ' कह कह हिल जाते,
आलिङ्गन भर, मधु गन्ध-भरा बहता समीर जब दिन आते।
शुचि, स्वच्छ और चौड़ी सड़कों के हरे-भरे घर में
सब को सुख से भर देता है ऋतुपति पल भर के अन्तर में!

मधु के दिन पर कितने दिन के! आतप में तप जल जाता सब!
तू सिखलाता कैसे केवल पल भर का है जग का वैभव।
इस स्वर्ण-परीक्षा से दीक्षा ले ज्ञानी बन मन-नीरजात
शीतल हो जाता आती है जब सावन की सुख-सरस रात।

जब रहा-सहा दुख धुल जाता, मन शुभ्र शरद सा खिल जाता—
यों दीप मालिका में आलोकित कर पथ शुभ्र शरद आता!
ऋतुओं का पहिया इसी तरह घूमा करता प्रति वर्ष यहाँ,
तेरे प्रसाद के लिये, तीर्थ! आते थे दानी हर्ष जहाँ।

खुसरू का बाग सिखाता है, है धूप-छाँह-सी यह माया
वृक्षों के नीचे लिख जाती 'है यों ही नित चञ्चल छाया।
वह दुर्ग!—जहाँ उस शान्ति-स्तम्भ में मूर्तिमान अब तक अशोक
था गर्व कभी, पर आज जगाता है उर उर में क्षोभ-शोक!

तू सीख त्याग, तू सीख प्रेम, यम-नियम सीख तू अज्ञानी—
क्या पत्थर पर अब तक अंकित यह दया-द्रवित कोमल वाणी।
जिसमें बोले होंगे गद्गद् वे शान्ति-स्नेह के अभिलाषी
दृग भर भर शोकाकुल अशोक, सम्राट भिक्षु औ संन्यासी!

यह जीवन चञ्चल छाया है, बदला करता प्रतिपल करवट,
मेरे प्रयाग की छाया में पर अब तक जीवित अक्षयवट!
क्या इसके अजर पत्र पर चढ़, जीवन जीतेगा महा प्रलय!
कह, जीवन में क्षमता है यदि, तो तम से हो प्रकाश निर्भय!

मैं भी फिर नित निर्भय खोजूँ, शाश्वत प्रकाश अक्षय जीवन,
निर्भय गाऊं मैं शान्ति करूं इस मृत्यु-भीत जग का क्रन्दन!
है नये जन्म का नाम मृत्यु, है नई शक्ति का नाम ह्रास,
है आदि अन्त का, अन्त आदि का यों सब दिन क्रम-बद्ध ग्रास।

प्यारे प्रयाग! तेरे उर में ही, था मम अन्तर स्वर निकला,
था कंठ खुला, काँटा निकला, स्वर शुद्ध हुआ कवि हृदय मिला,
कवि हृदय मिला, मन मुकुल खिला, अर्पित है जो श्रीचरणों में,
पर हो न सकेगा अभिनन्दन, मेरे इन कृत्रिम वर्णों में।

हे कृत्रिम, तू सत् प्रकृति-रूप, हे पूर्ण पुरातन तीर्थराज!
क्षमता दे जिससे कर पाऊं, तेरा अनन्त गुण गान आज!
दे शुभाशीष, हे पुण्यधाम, वाणी कल्याणी हो प्रकाम,
स्वीकृत हो अब श्रीचरणों में, वन्दी का यह अन्तिम प्रणाम!

तेरे चरणों में शीश धरे, आये होंगे कितने नरेन्द्र।
कितने ही आये चले गये कुछ दिन रह अभिमानी महेन्द्र!
मैं भी नरेन्द्र, पर इन्द्र नहीं, तेरा वन्दी हूँ तीर्थराज।
क्षमता दे जिससे कर पाऊं तेरा अनन्त गुणगान आज।

उदय शंकर भट्ट

मैं पथिक अवरुद्ध पथ, कैसे कहाँ, किस ओर जाऊँ ?
मधु पियासा-भार लेकर, विश्व में आया अकेला।
भावना में विश्व-वैभव-ने मुझे आगे ढकेला॥
स्वप्न की उन्मुक्त तरुणी पर स्वजीवन भार ढोया।
जागरण में स्वप्न खोये, स्वप्न में संसार खोया॥
सुनो, युग युग की शिथिल सब शृंखलायें तोड़ डालीं।
श्वास पर अंकित व्यथाएँ, प्यार के नीचे छिपा लीं॥
तुम न जानोगे कि कितने गरल के घट पी चुका हूँ।
तुम न समझोगे कि कितने दुःख पीकर जी चुका हूँ॥
आज रागों में न जाने महा भैरव बोलता क्या ?
आज आँखों में न जाने तिमिर कोई बोलता क्यों ?
किन्तु मैंने यही देखा एक मैं, आश अनेकों।
एक छोटा दिल न जाने प्यास क्यों उसमें अनेकों॥
एक यौवन की लहर आघात उस पर है अनेकों।
एक जीवन पर मरण के दूत मुँह बाए अनेकों॥
स्कन्ध निर्बल, सैकड़ों दुख-भार यह कैसे उठाऊँ ?
मैं पथिक, अवरुद्ध पथ, कैसे, कहाँ किस ओर जाऊँ ?
सामने यह लपलपाती ज्वाल प्रलयंकार जली है।
और पीछे बाघिनी-सी मृत्यु भी आती चली है॥
इधर नभ को चूमने वाला भयावह गिरि खड़ा है।
उधर यह उत्तुंग लहरों पर उछलता नद अड़ा है॥

शून्य पात्र, विहीन-धनु शर, नाव टूटी, पैर निर्बल।
साँझ आती है घिरी, बढ़ती अमा की गत पल पल॥
है नहीं विश्वास, साहस पास, स्मृतियाँ वह पुरानी।
सौंप आया प्रिय जनों को लहर-सी उठती जवानी॥
नभ गिरा जाता धरा पर बोझ ले उन्माद का सब।
काल का यह ग्रास-सी खाने चली बिजली धरा अब॥
दिशा भूलीं, पन्थ भूला, ज्ञान जाने किधर खोया।
हाय, छोटे से हृदय पर क्यों यहाँ अनुराग ढोया?
गिना करतीं तारिकाएँ नित्य उठ अपनी व्यथाएँ।
पुष्प के स्मय से वसन्ती प्यार की गीली कथाएँ॥
जो जवानी गुदगुदी उल्लास में भर नित्य पीती।
जो खिला मधुमास सा प्रिय-हास पीकर नित्य जाती॥
जो कटीली भौंह का निक्षेप-शर पी जा रही थी।
अमृत की शत निर्झरों की लहर से सुख-सी रही थी॥
जो नशीली आँख सी जग में विजयिनी हो रही थी।
जो कली औ, कुसुम के अवकाश सी नव हो रही थी।
आज वे उल्लास रविसम तिमिर पारावार डूबे।
जागरण भी आज मुझसे स्वप्न के सम द्वार डूबे॥
आज जीवन का निपीड़ित मरण धन कंकाल हूँ मैं।
आज मणि से हीन, गत-मद सँपेरे का व्याल हूँ मैं॥
बढ़ रही है आग चारो ओर अब किसको बुलाऊँ?
मैं पथिक, अवरुद्ध पथ, , कैसे, कहाँ, किस ओर जाऊँ?

रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल'

भूल मत जाना पथी तरुणी तरुण मैं एक तुम-सा।

(१)

गीत ये मेरे मिले पथ-रेणु में मैं था भिखारी
प्राण की वंशी भरे पथ भूल आई आयु सारी
इस नियति-शासित पराजित भीरु जीवन के रुदन में
हो न पाया मैं मुखर भी तो अचेतन इस जलन में
कर न पाया संतरित मैं प्यास का वारिधि अपावन
खा गये अंगार मेरी पसलियों का सुख समर्पण
किस सुर्चीता के लिये व्याकुल जला यह भी न जाना
बालपन से ले प्रलय-मन्थन रहा चिर मूक प्यासा

(२)

व्यक्त भी तो कर न पाया लालसा के स्वप्न अपने
निज अभावों से अपरिचित आ गया स्वच्छन्द तपने
दूर मरु-सङ्गीत-सा व्याकुल रहा ध्वनि हीन तुम बिन
दूर था फिर भी तुम्हीं में रह चुका जैसे बहुत दिन
था अधिक अन्तर न मुझमें थी सुलगती एक ज्वाला
एक बुझते दीप में भी जो न भर पाई उजाला
किन्तु सुख-दुख में तुम्हीं सा मैं बँधा रहने न पाया
काश ! पैदा हो न होता सुप्त ही रहती पिपासा

(३)

जिन्दगी बीती मरण की गैल का शृंगार करते
शैल संध्या - सा महा वन की निशा का रूप भरते
यह अजब अभिमान अपना भी कभी तो हो न पाया
वासना तीखी विफल ज्यों व्यर्थता की एक छाया
खून मेरी हसरतों का विश्व ने कर तृप्त पाई
यदि क्षुभित पाषाण-सा निस्पन्द रहता शान्त भाई
था भला होता न मरघट-सी तृषाओं का प्रदर्शन
और यों होता न प्राणों की प्रखरता का तमाशा

(४)

पूर्वगामी इस पथिक को भूलना साथी न मेरे
देख तरुणी के सुमुख जब मर्म झंझावात घेरे
जब मधुर पगध्वनि किसी को वक्ष में तूफान लाये
एक अमृत वेदना जब उच्छ्वसित हो-हो जलाये
भूलना मुझको न जिसने भी प्रणय का स्वप्न देखा
अन्धगीतों से भरी जीवन्त जिसकी लौह रेखा
था मिला संसार जैसा छोड़ वैसा ही चला जो
पर अजीवन में लिये आकंठ जो जलती दुराशा

(५)

माधवी वन में फिरे निःशब्द जब दक्षिण समीरण
जब कथा के शेष रहते कण्ठ भर आये, उठे मन
वृन्त-च्युत सूखे सुमन सी छूटती तब सुधि किसी की
फेंकना मेरे गृही मत काल कोणों में अगति सी
विध वधू के चुम्बनों में भूलना मुझको न साथी
गूँथती जीवन - मरण की आँच मेरी कल्पना थी
तुम सफल, मैं किन्तु था असफल यही संबंध क्या कम
तृप्ति वह कैसी न जिसमें याद भी आई निराशा

(६)

और कोई यह निखिल लिप्सा अगर यह दाह लाता
प्राण-पीड़क एक तृष्णा ले अगर उठने न पाता
सत्य कहता हूँ न जो करता बहुत था और सब कम
मार छाती पर चरण-आघात द्रोही क्षुब्ध भृगु सम
मैं बँधा ज्वालामुखी अब तक कभी का डोल जाता
बाँध रक्खा है किसी ने, मैं न बन्धन खोल पाता
इस कफस में भी यहा चिरकाल जलने की न आशा
भूल मत जाना पथी तरुणी तरुण मैं था तुम्हीं सा